IAS /PCS प्रारंभिक परीक्षा के किए उपयोगी

मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना

सामान्य अध्ययन

प्राचीन भारत का इतिहास

मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना प्रकोष्ठ

उत्तर प्रदेश प्रशासन और प्रबंधन अकादमी

सेक्टर-D, अलीगंज, लखनऊ - 226024

यह अध्ययन-सामग्री मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना प्रकोष्ठ (उत्तर प्रदेश प्रशासन और प्रबंधन अकादमी द्वारा उत्तर प्रदेश सरकार की मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना) के अंतर्गत सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी कर रहे प्रतियोगियों की सहायता के लिए तैयार कराई गई है।

इस पाठ्य-सामग्री को उत्तर प्रदेश प्रशासन एवं प्रबंधन अकादमी, लखनऊ में 65वें आधारभूत प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे प्रशिक्षु (डिप्टी कलक्टर्स-UPPCS-2018) द्वारा प्रोजेक्ट कार्य के रूप में तैयार किया गया है।

इस सामग्री की पूर्णत: शैक्षणिक और जन कल्याणकारी-उद्देश्यों के लिए तैयार किया है-इसका एक मात्र उद्देश्य प्रदेश के छात्र/छात्राओं का प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में मार्गदर्शन व सहयोग करना है।

वैधानिक सूचना - इस अध्ययन सामग्री का किसी भी प्रकार से व्यावसायिक उपयोग प्रतिबंधित है.

INDEX

क्र.स.	अध्याय का नाम	पेज संख्या
1.	पाषाण युग	4-7
2.	ताम्र पाषाण काल (3500/4000 ई.पू.)	8-9
3.	सिंधु घाटी सभ्यता	10-17
4.	वैदिक काल	18-27
5.	बौद्ध धर्म	28-33
6.	जैन धर्म	34-36
7.	महाजनपदों का उदय	37-39
8.	मगध साम्राज्य का उत्कर्ष	40-42
9.	प्राचीन भारत पर विदेशी आक्रमण	43-45
10.	मौर्य वंश का इतिहास	46-56
11.	मौर्योत्तर काल	57-66
12.	सातवाहन वंश	67-71
13.	संगम युग	72-77
14.	गुप्त राजवंश	78-81
15.	हर्षवर्धन का समय	82-83

पाषाण युग

भारतीय पाषाण युग का संक्षिप्त विवरण

पाषाण युग के रूप में उस युग को परिभाषित किया गया है जब प्रागैतिहासिक मनुष्य अपने प्रयोजनों के लिए पत्थरों का उपयोग करते थे। इस युग को तीन भागों- पुरापाषाण युग, मध्य पाषाण युग और नवपाषाण युग में बांटा गया है।

पुरापाषाण (PALEOLITHIC AGE)

जिस समय आरंभिक मानव पत्थर का प्रयोग करता था, उस समय को पुरातत्त्वविदों ने पुरापाषाण काल नाम दिया है।

1. यह शब्द प्राचीन और पाषाण (पत्थर) से बना है।
2. यह वह काल था जब मनुष्य ने पत्थरों का प्रयोग सबसे अधिक किया।
3. पुरातत्त्वविदों के अनुसार, पुरापाषाण काल की अवधि बीस लाख साल पूर्व से बारह हजार साल पहले तक है।
4. इस युग को तीन भागों में बाँटा गया है - आरंभिक, मध्य और उत्तर पुरापाषाण युग।
5. माना जाता है कि मनुष्य इस युग में सबसे अधिक दिनों तक रहा है।
6. इस युग में मनुष्य खेती नहीं करता था बल्कि पत्थरों का प्रयोग कर शिकार करता था।
7. इस युग में लोग गुफाओं में रहते थे।
8. इस युग में सबसे महत्त्वपूर्ण काम जो मानव ने सीखा, वह था आग को जलाना। आग का उपयोग विभिन्न कार्यों के लिए होने लगा।
9. पुरातत्त्वविदों ने पुणे-नासिक क्षेत्र, कर्नाटक के हुँस्गी-क्षेत्र, आंध्र प्रदेश के कुरनूल-क्षेत्र में इस युग के स्थलों की खोज की है। इन क्षेत्रों में कई नदियाँ हैं, जैसे - ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा भीमा, वर्धा आदि। इन स्थानों में चूनापत्थर से बने अनेक पुरापाषाण औजार (weapons) मिले हैं।
10. नदियों के कारण इन स्थलों के जलवायु में नमी रहती है। यहाँ गैंडा और जंगली बैल के अनेक कंकाल मिले हैं। इससे अनुमान लगाया गया है कि इन क्षेत्रों में इस

युग में आज की तुलना में अधिक वर्षा होती होगी। ऐसा अनुमान इस आधार पर लगाया है कि गैंडा और जंगली बैल नमी वाले स्थानों में रहना पसंद करते हैं।

11. अनुमान लगाया जाता है कि इस युग का अंत होते-होते जलवायु में परिवर्तन होने लगा। धीरे-धीरे इन क्षेत्रों के तापमान में वृद्धि हुई।

12. इस युग का मनुष्य चित्रकारी करता था जिसका प्रमाण उन गुफाओं से मिलता है जहाँ वह रहता था।

मध्यपाषाण युग (MESOLITHIC AGE)

पुरापाषाण काल लगभग एक लाख वर्ष तक रहा। उसके बाद मध्यपाषाण या मेसोलिथिक युग (Mesolithic Age) आया। बदले हुए युग में कई परिवर्तन हुए। जीवनशैली में बदलाव आया। तापमान में भी वृद्धि हुई। साथ-साथ पशु और वनस्पति में भी बदलाव आये। इस युग को मध्यपाषण युग (Mesolithic Age) इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह युग पुरापाषाण युग और नवपाषाण युग के बीच का काल है। जलवायु में परिवर्तनों के साथ-साथ वनस्पति व जीव-जन्तुओं में भी परिवर्तन हुए और मानव के लिए नए क्षेत्रों की ओर आगे बढ़ना संभव हुआ।

1. तापमान में बदलाव आया। गर्मी बढ़ी, गर्मी बढ़ने के कारण जौ, गेहूँ, धान जैसी फसलें उगने लगीं।
2. इस समय के लोग भी गुफाओं में रहते थे।
3. पुरातत्त्वविदों को कई स्थलों से मेसोलिथिक युग के अवशेष मिले हैं।
4. पश्चिम, मध्य भारत और मैसूर (कर्नाटक) में इस युग की कई गुफाएँ मिलीं हैं।
5. मध्यपाषाण युग में लोग मुख्य रूप से पशुपालक थे। मनुष्यों ने इन पशुओं को चारा खिलाकर पालतू बनाया। इस प्रकार मध्यपाषाण काल में मनुष्य पशुपालक बना।
6. इस युग में मनुष्य खेती के साथ-साथ मछली पकड़ना, शहद जमा करना, शिकार करना आदि कार्य करता था।

नवपाषाण काल (NEOLITHIC AGE)

मध्यपाषाण काल के बाद नवपाषाण युग में मनुष्य के जीवन में बहुत अधिक परिवर्तन आया। इस युग में वह भोजन का उत्पादक हो गया अर्थात् उसे कृषि पद्धति का अच्छा ज्ञान हो गया। यह पाषाणयुग की तीसरी और अंतिम कड़ी है। भारत में 4,000 ई.पू. से यह यह शुरू हुआ और संभवतः 2500 ई.पू. तक चलता रहा। इस युग में मनुष्य का मस्तिष्क अधिक विकसित

हो चुका था। उसने अपने बौद्धिक विकास, अनुभव, परम्परा और स्मृति का लाभ उठाकर अपने पूर्व काल के औजारों व हथियारों को काफी सुधार लिया। दक्षिण भारत और पूर्व भारत में अनेक स्थलों पर इस संस्कृति के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के दक्षिण में ये साक्ष्य मिले हैं। इस युग में भारतीय मानव ने ग्रेनाइट की पहाड़ियों अथवा नदी तट के समीप बस्तियाँ स्थापित की थीं। पूर्वी भारत में गंगा, सोन, गंडक और घाघरा नदियों के डेल्टाओं में मानव रहता था।

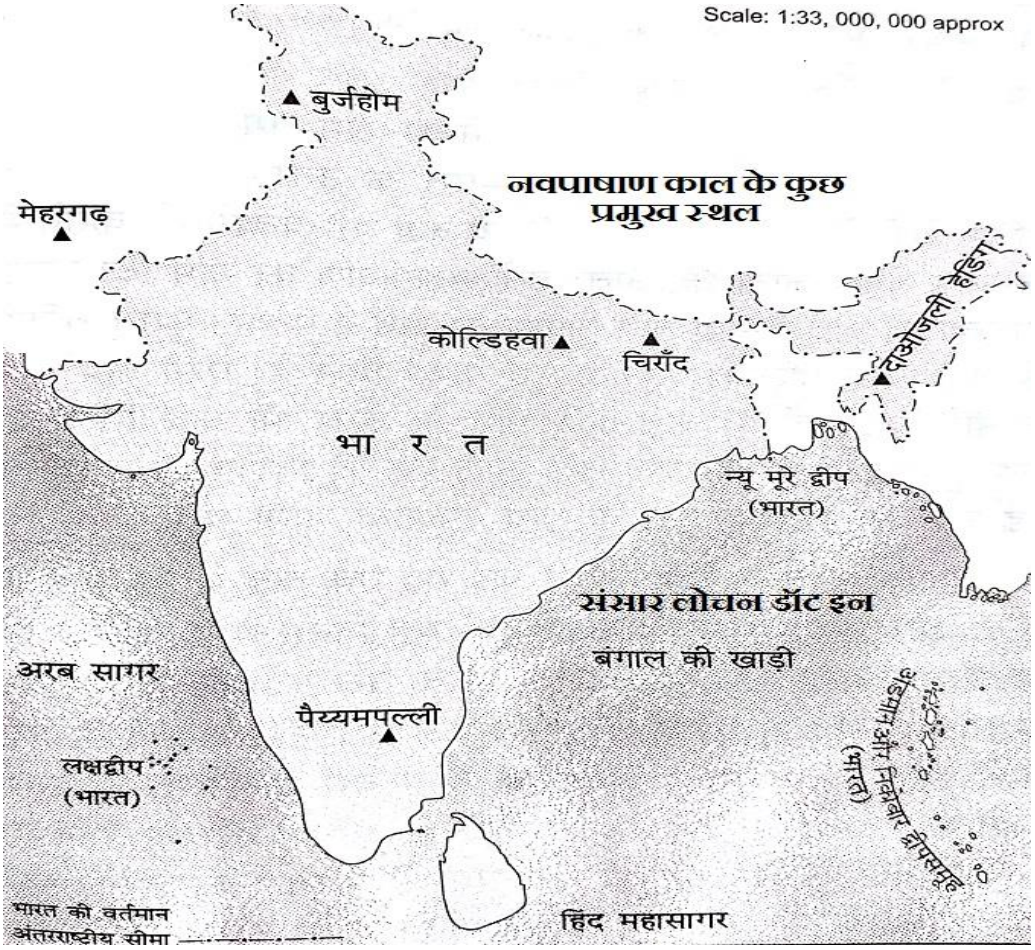

1. मानव को पता लग गया कि बीज से वनस्पति बनता है। वह बीज बोने लगा।
2. बीज बोने के साथ-साथ उसने सिंचाई करना भी सीखा।
3. कई स्थलों पर इस युग के अनाज के दानें मिलें हैं। इन दानों से पता लगता है कि उस समय कई फसलें उगाई जाती थीं।
4. उत्तर -पश्चिम में मेहरगढ़ (पाकिस्तान में), गुफकराल और बुर्जहोम (कश्मीर में), कोल्डिहवा और महागढ़ा (उत्तर प्रदेश में), चिरांद (बिहार में), हल्लूर और पैय्यमपल्ली (आंध्र प्रदेश में) गेहूँ, जौ, चावल, ज्वार-बाजरा, दलहन, काला चना और हरा चना जैसी फसलें उगाने के प्रमाण मिले हैं।

5. नवपाषाण युग में कृषक और पशुपालक एक साथ एक स्थान पर छोटी-छोटी बस्तियाँ बनाकर रहने लगे।
6. परिवारों के समूह ने जनजाति को जन्म दिया। जन्मजाति के सदस्यों को आयु, बुद्धिमत्ता और शारीरिक बल के आधार पर कार्य दिया जाता था।
7. ज्येष्ठ और बलशाली पुरुष को जनजाति का सरदार बनाया जाता था।
8. नवपाषाण काल (Neolithic Age) में जनजातियों की अपनी संस्कृति और परम्पराएँ होती थीं। भाषा, संगीत, चित्रकारी (Language, music, painting etc।) आदि से इनकी संस्कृति का ज्ञान होता है।
9. इस काल में लोग जल, सूर्य, आकाश, पृथ्वी, गाय और सर्प की पूजा (worship) विशेष रूप से करते थे।
10. इस काल में बने मिट्टी के बरतन कई स्थलों से प्राप्त हुए हैं। इन बरतनों पर रंग लगाकर और चित्र बनाकर उन्हें आकर्षक बनाने का प्रयास करते थे।

ताम्र पाषाण काल (3500/4000 ई.पू.)

- ताम्र + पाषाण = ताम्रपाषाणिक संस्कृति इस संस्कृति में ताँबा को खोज लिया गया था, लेकिन अधिकांशत: पाषाण उपकरणों का उपयोग हो रहा था।
- ताँबे का सर्वप्रथम प्रयोग 5000 ई.पू. में किया गया था।
- ताम्र पाषाण काल के लोग प्रमुख रूप से ग्रामीण समुदाय के थे।
- ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति 3 प्रकार की थी -
    - हड़प्पापूर्व
    - हड़प्पा सभ्यता एवं समकालीन ताम्रपाषाण संस्कृति
    - उत्तर हड़प्पाई ताम्रपाषाण संस्कृति
- हड़प्पापूर्व संस्कृति (ताम्र पाषाणिक संस्कृति) -4000 से 2600 ई। पू।
    - सोथी संस्कृति (बीकानेर क्षेत्र)
    - झूकर - झाकर संस्कृति (सिंध क्षेत्र)
- हड़प्पाकालीन संस्कृति - 2600 से 1800 ई। पू।
    - आहड़ संस्कृति (राजस्थान)
    - गणेश्वर संस्कृति
    - OCM गौरिक मृदभांड संस्कृति
- हड़प्पा सभ्यता को कांस्ययुगीन सभ्यता भी कहा जाता है।
- सबसे पहले कांस्य की प्राप्ति हड़प्पा से ही हुई है।
- उत्तर हड़प्पा संस्कृति - 2000 से 1400 ई। पू।
    - मालवा
    - कायथा
    - ऐरण
    - जौरवे
    - MP
    - PRW
    - BRW

- NBP

- इस काल में मनुष्य गेहूं,धान व दाल की कृषि करने में प्रवीण हो गया था।
- नवदाटोली के उत्खनन में सभी अनाजों के साक्ष्य मिले हैं।
- अहार के लोग पत्थर निर्मित गृहों में रहते थे।
- दैमाबाद में कांसे की निर्मित वस्तुएं प्राप्त हुई हैं।
- ताम्र पाषाण के लोग वस्र-निर्माण के जानकार थे ।
- इनामगांव में कुम्भकार, धातुकार, हाथी दांतके शिल्पी, चूना बनाने वाले, खिलौने, मिट्टी की मूर्ति(टेराकोटा) बनाने वाले कारीगरों के साक्ष्य भी मिलते हैं।
- इस काल के लोग मातृदेवी की पूजा करते थे और वृषभ धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतीक था।
- 1200ई.पू. के लगभग ताम्र पाषाणिक संस्कृति विलुप्त हो गई।
- कायथा संस्कृति 500ई.पू. तकअस्तित्व में रही।
- ताम्र पाषाणिक बस्तियों के लुप्त होने का प्रमुख कारण अत्यल्प वर्षा माना जाता है।
- ताम्र पाषाणिक संस्कृतियों में कायथा संस्कृति सबसे पुरानी है। यह चंबल नदी क्षेत्र में थी।
- सभी ताम्र पाषाण समुदाय चाकों पर बने काले व लाल मृदभांडों का प्रयोग करते थे।
- चित्रित मृदभांडो का प्रयोग सबसे पहले ताम्र पाषाणिक लोगों ने ही किया था।
- सर्वप्रथम ताम्र पाषाण काल के लोगों ने ही प्रायद्वीपीय भारत में बड़े-बड़े गांव बसाए थे।
- ताम्र पाषाण स्थलों से हल, फावड़ा मिले हैं।
- ताम्रपाषाणिक संस्कृति के सबसे ज्यादा स्थल पश्चिमी महाराष्ट्र से मिले हैं।
- ताम्रपाषाणिक संस्कृति के प्रमुख स्थल-जोरवे, दाइमाबाद, नेवासा, इनामगाँव, नासिक

सिंधु घाटी सभ्यता

परिचय-

- यह सभ्यता लगभग 2500 ईस्वी पूर्व दक्षिण एशिया के पश्चिमी भाग में फैली हुई थी,जो कि वर्तमान में पाकिस्तान तथा पश्चिमी भारत के नाम से जाना जाता है।
- सिंधु घाटी सभ्यता मिस्र,मेसोपोटामिया,भारत और चीन की चार सबसे बड़ी प्राचीन नगरीय सभ्यताओं से भी अधिक उन्नत थी।
- 1920 में, भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा किये गए सिंधु घाटी के उत्खनन से प्राप्त अवशेषों से हड़प्पा तथा मोहनजोदडो जैसे दो प्राचीन नगरों की खोज हुई।
- भारतीय पुरातत्त्व विभाग के तत्कालीन डायरेक्टर जनरल जॉन मार्शल ने सन 1924 में सिंधु घाटी में एक नई सभ्यता की खोज की घोषणा की।

हड़प्पा सभ्यता के महत्त्वपूर्ण स्थल:

स्थल	खोजकर्ता	अवस्थिति	महत्त्वपूर्ण खोज
हड़प्पा	दयाराम साहनी (1921)	पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में मोंटगोमरी जिले में रावी नदी के तट पर स्थित है।	मनुष्य के शरीर की बलुआ पत्थर की बनी मूर्तियाँ अन्नागार बैलगाड़ी
मोहनजोदड़ो (मृतकों का टीला)	राखलदास बनर्जी (1922)	पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के लरकाना जिले में सिंधु नदी के तट पर स्थित है।	विशाल स्नानागर अन्नागार कांस्य की नर्तकी की मूर्ति पशुपति महादेव की मुहर

			दाड़ी वाले मनुष्य की पत्थर की मूर्ति बुने हुए कपडे
सुत्कान्गेडोर	स्टीन (1929)	पाकिस्तान के दक्षिण-पश्चिमी राज्य बलूचिस्तान में दाश्त नदी के किनारे पर स्थित है।	हड़प्पा और बेबीलोन के बीच व्यापार का केंद्र बिंदु था।
चन्हुदड़ो	एन.जी. मजूमदार (1931)	सिंधु नदी के तट पर सिंध प्रांत में।	मनके बनाने की दुकानें बिल्ली का पीछा करते हुए कुत्ते के पदचिन्ह
आमरी	एन.जी. मजूमदार (1935)	सिंधु नदी के तट पर।	हिरन के साक्ष्य
कालीबंगन	घोष (1953)	राजस्थान में घग्गर नदी के किनारे।	अग्नि वेदिकाएँ ऊंट की हड्डियाँ लकड़ी का हल
लोथल	आर. राव (1953)	गुजरात में कैम्बे की कड़ी के नजदीक भोगवा नदी के किनारे पर स्थित।	मानव निर्मित बंदरगाह गोदीवाडा चावल की भूसी अग्नि वेदिकाएं शतरंज का खेल
सुरकोतदा	जे.पी. जोशी	गुजरात।	घोड़े की हड्डियाँ

	(1964)		मनके
बनावली	आर.एस. विष्ट (1974)	हरियाणा के हिसार जिले में स्थित।	मनके जौ हड़प्पा पूर्व और हड़प्पा संस्कृतियों के साक्ष्य
धौलावीरा	आर.एस. विष्ट (1985)	गुजरात में कच्छ के रण में स्थित।	जल निकासी प्रबंधन जल कुंड

सिंधु घाटी सभ्यता के चरण

सिंधु घाटी सभ्यता के तीन चरण हैं-

1. प्रारंभिक हड़प्पाई सभ्यता (3300 ई.पू. - 2600 ई.पू. तक)
2. परिपक्व हड़प्पाई सभ्यता (2600 ई.पू. - 1900 ई.पू. तक)
3. उत्तर हड़प्पाई सभ्यता (1900 ई.पू. - 1300 ई.पू. तक)

- प्रारंभिक हड़प्पाई चरण 'हाकरा चरण' से संबंधित है, जिसे घग्गर- हाकरा नदी घाटी में चिह्नित किया गया है।
- इस चरण की विशेषताएं एक केंद्रीय इकाई का होना तथा बढते हुए नगरीय गुण थे।
- व्यापार क्षेत्र विकसित हो चुका था और खेती के साक्ष्य भी मिले हैं। उस समय मटर, तिल, खजूर, रुई आदि की खेती होती थी।
- कोटदीजी नामक स्थान परिपक्व हड़प्पाई सभ्यता के चरण को प्रदर्शित करता है।
- 2600 ई.पू. तक सिंधु घाटी सभ्यता अपनी परिपक्व अवस्था में प्रवेश कर चुकी थी।
- परिपक्व हड़प्पाई सभ्यता के आने तक प्रारंभिक हड़प्पाई सभ्यता बड़े- बड़े नगरीय केंद्रों में परिवर्तित हो चुकी थी। जैसे- हड़प्पा और मोहनजोदड़ो वर्तमान पाकिस्तान में तथा लोथल जो कि वर्तमान में भारत के गुजरात राज्य में स्थित है।
- सिंधु घाटी सभ्यता के क्रमिक पतन का आरंभ 1800 ई.पू. से माना जाता है, 1700 ई.पू. तक आते-आते हड़प्पा सभ्यता के कई शहर समाप्त हो चुके थे ।

- परंतु प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता के बाद की संस्कृतियों में भी इसके तत्व देखे जा सकते हैं।
- कुछ पुरातात्त्विक आँकड़ों के अनुसार उत्तर हड़प्पा काल का अंतिम समय 1000 ई.पू. - 900 ई.पू. तक बताया गया है।

नगरीय योजना और विन्यास-

- हड़प्पाई सभ्यता अपनी नगरीय योजना प्रणाली के लिये जानी जाती है।
- मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के नगरों में अपने- अपने दुर्ग थे जो नगर से कुछ ऊँचाई पर स्थित होते थे जिसमें अनुमानतः उच्च वर्ग के लोग निवास करते थे।
- दुर्ग से नीचे सामान्यतः ईंटों से निर्मित नगर होते थे,जिनमें सामान्य लोग निवास करते थे।
- हड़प्पा सभ्यता की एक ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि इस सभ्यता में ग्रिड प्रणाली मौजूद थी जिसके अंतर्गत सडकें एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं।
- अन्न भंडारों का निर्माण हड़प्पा सभ्यता के नगरों की प्रमुख विशेषता थी।
- जली हुई ईंटों का प्रयोग हड़प्पा सभ्यता की एक प्रमुख विशेषता थी क्योंकि समकालीन मिस्र में मकानों के निर्माण के लिये शुष्क ईंटों का प्रयोग होता था।
- हड़प्पा सभ्यता में जल निकासी प्रणाली बहुत प्रभावी थी।
- हर छोटे और बड़े घर के अंदर स्वंय का स्नानघर और आँगन होता था।
- कालीबंगा के बहुत से घरों में कुएँ नही पाए जाते थे।
- कुछ स्थान जैसे लोथल और धौलावीरा में संपूर्ण विन्यास मज़बूत और नगर दीवारों द्वारा भागों में विभाजित थे।

कृषि-

- हड़प्पाई गाँव मुख्यतः प्लावन मैदानों के पास स्थित थे,जो पर्याप्त मात्रा में अनाज का उत्पादन करते थे।
- गेहूँ, जौ, सरसों, तिल, मसूर आदि का उत्पादन होता था। गुजरात के कुछ स्थानों से बाजरा उत्पादन के संकेत भी मिले हैं, जबकि यहाँ चावल के प्रयोग के संकेत तुलनात्मक रूप से बहुत ही दुर्लभ मिलते हैं।
- सिंधु सभ्यता के मनुष्यों ने सर्वप्रथम कपास की खेती प्रारंभ की थी।

- वास्तविक कृषि परंपराओं को पुनर्निर्मित करना कठिन होता है क्योंकि कृषि की प्रधानता का मापन इसके अनाज उत्पादन क्षमता के आधार पर किया जाता है।
- मुहरों और टेराकोटा की मूर्तियों पर सांड के चित्र मिले हैं तथा पुरातात्त्विक खुदाई से बैलों से जुते हुए खेत के साक्ष्य मिले हैं।
- हड़प्पा सभ्यता के अधिकतम स्थान अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में मिले हैं, जहाँ खेती के लिये सिंचाई की आवश्यकता होती है।
- नहरों के अवशेष हड़प्पाई स्थल शोर्तुगई अफगानिस्तान में पाए गए हैं, लेकिन पंजाब और सिंध में नहीं।
- हड़प्पाई लोग कृषि के साथ - साथ बड़े पैमाने पर पशुपालन भी करते थे ।
- घोड़े के साक्ष्य सूक्ष्म रूप में मोहनजोदड़ो और लोथल की एक संशययुक्त टेराकोटा की मूर्ति से मिले हैं। हड़प्पाई संस्कृति किसी भी स्थिति में अश्व केंद्रित नहीं थी।

अर्थव्यवस्था-

- अनगिनत संख्या में मिली मुहरें ,एकसमान लिपि,वजन और मापन की विधियों से सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों के जीवन में व्यापार के महत्त्व के बारे में पता चलता है।
- हड़प्पाई लोग पत्थर ,धातुओं, सीप या शंख का व्यापर करते थे।
- धातु मुद्रा का प्रयोग नहीं होता था। व्यापार की वस्तु विनिमय प्रणाली मौजूद थी।
- अरब सागर के तट पर उनके पास कुशल नौवहन प्रणाली भी मौजूद थी।
- उन्होंने उत्तरी अफगानिस्तान में अपनी व्यापारिक बस्तियाँ स्थापित की थीं जहाँ से प्रमाणिक रूप से मध्य एशिया से सुगम व्यापार होता था।
- दजला -फरात नदियों की भूमि वाले क्षेत्र से हड़प्पा वासियों के वाणिज्यिक संबंध थे।

शिल्पकला -

- हड़प्पाई कांस्य की वस्तुएँ निर्मित करने की विधि, उसके उपयोग से भली भाँति परिचित थे।
- तांबा राजस्थान की खेतड़ी खान से प्राप्त किया जाता था और टिन अनुमानतः अफगानिस्तान से लाया जाता था ।
- बुनाई उद्योग में प्रयोग किये जाने वाले ठप्पे बहुत सी वस्तुओं पर पाए गए हैं।
- बड़ी -बड़ी ईंट निर्मित संरचनाओं से राजगीरी जैसे महत्त्वपूर्ण शिल्प के साथ साथ राजमिस्त्री वर्ग के अस्तित्व का पता चलता है।
- हड़प्पाई नाव बनाने की विधि, मनका बनाने की विधि, मुहरें बनाने की विधि से भली- भाँति परिचित थे। टेराकोटा की मूर्तियों का निर्माण हड़प्पा सभ्यता की महत्त्वपूर्ण शिल्प विशेषता थी।
- जौहरी वर्ग सोने, चांदी और कीमती पत्थरों से आभूषणों का निर्माण करते थे ।
- मिट्टी के बर्तन बनाने की विधि पूर्णतः प्रचलन में थी, हड़प्पा वासियों की स्वयं की विशेष बर्तन बनाने की विधियाँ थीं, हड़प्पाई लोग चमकदार बर्तनों का निर्माण करते थे ।

संस्थाएँ-

- सिंधु घाटी सभ्यता से बहुत कम मात्रा में लिखित साक्ष्य मिले हैं, जिन्हें अभी तक पुरातत्त्वविदों तथा शोधार्थियों द्वारा पढ़ा नहीं जा सका है।
- एक परिणाम के अनुसार, सिंधु घाटी सभ्यता में राज्य और संस्थाओं की प्रकृति समझना काफी कठिनाई का कार्य है ।
- हड़प्पाई स्थलों पर किसी मंदिर के प्रमाण नहीं मिले हैं। अतः हड़प्पा सभ्यता में पुजारियों के प्रभुत्व या विद्यमानता को नकारा जा सकता है।
- हड़प्पा सभ्यता अनुमानतः व्यापारी वर्ग द्वारा शासित थी।
- अगर हम हड़प्पा सभ्यता में शक्तियों के केंद्रण की बात करें तो पुरातत्त्वीय अभिलेखों द्वारा कोई ठोस जानकारी नहीं मिलती है।
- कुछ पुरातत्त्वविदों की राय में हड़प्पा सभ्यता में कोई शासक वर्ग नहीं था तथा समाज के हर व्यक्ति को समान दर्जा प्राप्त था ।
- कुछ पुरातत्त्वविदों की राय में हड़प्पा सभ्यता में कई शासक वर्ग मौजूद थे ,जो विभिन्न हड़प्पाई शहरों में शासन करते थे ।

धर्म-

- टेराकोटा की लघुमूर्तियों पर एक महिला का चित्र पाया गया है, इनमें से एक लघुमूर्ति में महिला के गर्भ से उगते हुए पौधे को दर्शाया गया है।
- हड़प्पाई पृथ्वी को उर्वरता की देवी मानते थे और पृथ्वी की पूजा उसी तरह करते थे, जिस प्रकार मिस्र के लोग नील नदी की पूजा देवी के रूप में करते थे ।
- पुरुष देवता के रूप में मुहरों पर तीन शृंगी चित्र पाए गए हैं जो कि योगी की मुद्रा में बैठे हुए हैं ।
- देवता के एक तरफ हाथी, एक तरफ बाघ, एक तरफ गैंडा तथा उनके सिंहासन के पीछे भैंसा का चित्र बनाया गया है। उनके पैरों के पास दो हिरनों के चित्र है। चित्रित भगवान की मूर्ति को पशुपतिनाथ महादेव की संज्ञा दी गई है।
- अनेक पत्थरों पर लिंग तथा स्त्री जनन अंगों के चित्र पाए गए हैं।
- सिंधु घाटी सभ्यता के लोग वृक्षों तथा पशुओं की पूजा किया करते थे।
- सिंधु घाटी सभ्यता में सबसे महत्त्वपूर्ण पशु एक सींग वाला गैंडा था तथा दूसरा महत्त्वपूर्ण पशु कूबड़ वाला सांड था।
- अत्यधिक मात्रा में ताबीज भी प्राप्त किये गए हैं।

सिंधु घाटी सभ्यता का पतन-

- सिंधु घाटी सभ्यता का लगभग 1800 ई.पू. में पतन हो गया था, परंतु उसके पतन के कारण अभी भी विवादित हैं।
- एक सिद्धांत यह कहता है कि इंडो-यूरोपियन जनजातियों जैसे- आर्यों ने सिंधु घाटी सभ्यता पर आक्रमण कर दिया तथा उसे हरा दिया ।
- सिंधु घटी सभ्यता के बाद की संस्कृतियों में ऐसे कई तत्त्व पाए गए जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह सभ्यता आक्रमण के कारण एकदम विलुप्त नहीं हुई थी ।
- दूसरी तरफ से बहुत से पुरातत्त्वविद सिंधु घाटी सभ्यता के पतन का कारण प्रकृति जन्य मानते हैं।
- प्राकृतिक कारण भूगर्भीय और जलवायु संबंधी हो सकते हैं।
- यह भी कहा जाता है कि सिंधु घाटी सभ्यता के क्षेत्र में अत्यधिक विवर्तिनिकी विक्षोभों की उत्पत्ति हुई जिसके कारण अत्यधिक मात्रा में भूकंपों की उत्पत्ति हुई।

- एक प्राकृतिक कारण वर्षण प्रतिमान का बदलाव भी हो सकता है।
- एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि नदियों द्वारा अपना मार्ग बदलने के कारण खाद्य उत्पादन क्षेत्रों में बाढ़आ गई हो ।

वैदिक काल

वैदिक काल को ऋग्वैदिक या पूर्व वैदिक काल (1500 -1000 ई.पू.) तथा उत्तर वैदिक काल (1000 - 600 ई.पू.) में बांटा गया है।

आर्यों का भारत आगमन

मैक्समूलर के अनुसार भारत एवं ईरान के मध्य अवस्थित मध्य एशिया क्षेत्र से निकलकर एक शाखा यूरोप, दूसरी शाखा ईरान एवं तीसरी शाखा भारत में बसी। भारत में जो शाखा आई थी वह शाखा अफगानिस्तान से होते हुये हिन्दूकुश पर्वत को पार करके सप्तसिंधु क्षेत्र आये तथा यहीं पर ये लोग बस गये थे।

आर्य कौन थे

इंडो - आर्यन भाषा बोलने वाले लोग उत्तर- पश्चिमी पहाड़ों से आये थे तथा पंजाब के उत्तर पश्चिम में बस गए तथा बाद में गंगा के मैदानीय इलाकों में जहाँ इन्हे आर्यन् या इंडो- आर्यन् के नाम से जाना गया । ये लोग इंडो- ईरानी, इंडो- यूरोपीय या संस्कृत भाषा बोलते थे। आर्यन की उत्पत्ति के बारे में सही जानकारी नहीं है, इस पर अलग अलग विद्वानो के अलग विचार हैं। ये कहा गया है कि आर्यन्स अल्प्स के पूर्व(यूरेशिया), मध्य एशिया, आर्कटिक क्षेत्र, जर्मनी तथा दक्षिणी रूस में रहे।

अतः हम कह सकते हैं, कि आर्यन उन लोगों को कहा जाता था, जो प्राचीन इंडो-युरोपियन भाषा बोलते थे और जो प्राचीन ईरान और उत्तर भारतीय महाद्वीपों में बसने की सोचते थे। जहाँ पर आर्य बसे वह स्थान सप्त सैंधव प्रदेश कहलाया। इस सप्त सैंधव प्रदेश में सात नदियाँ आती हैं, जो वैदिककाल थी, जिनके नाम निम्नलिखित हैं-

- सिंधु
- सरस्वती
- वितस्ता (झेलम)
- अस्किनी (चेनाब)
- पुरुष्णी (रावी/ इरावदी)
- शतुद्री (सतलज)
- विपासा (व्यास)

आर्यों का संघर्ष

भारत पर भरत गोत्र के राजा ने शासन किया तथा भरत को दस राजाओं का विरोध भी झेलना पड़ा; पाँच आर्य तथा पाँच गैर आर्य। यह युद्ध परुषणी या रावी नदी पर किया गया था।

दशराज युद्ध दस राजाओं का युद्ध था। दशराज युद्ध का उल्लेख ऋग्वेद के 7 वें मंडल में मिलता है।इस युद्ध में एक तरफ आर्य कबीला तथा उनका मित्रपक्ष समुदाय था। इस समुदाय का सलाहकार(सेनापति) ऋषि विश्वामित्र थे। दशराज युद्ध में सुदास के भरत जन कबीले की विजय हुई। उत्तर भारत के आर्य लोगों पर उनका अधिकार हो गया। इस भरत जन कबीले के नाम पर ही पूरे देश का नाम भारत पड़ा।

जानकारी के स्रोत

भारत में आर्यो(Aryans) के आरम्भिक इतिहास के संबंध में जानकारी का प्रमुख स्रोत वैदिक साहित्य है। इस साहित्य के आलावा, वैदिक युग(Vedic Age) के बारे में जानकारी का एक अन्य स्रोत पुराताविवक साक्ष्य(Archaeological Evidances) है, लेकिन ये अपनी कतिपय त्रुटियों के कारण किसी स्वतंत्र अथवा निर्विवाद जानकारी का स्रोत न होकर साहित्यिक श्रोतो के आधार पर किये गए विश्लेषण की पुष्टि मात्र करते है।

ऋग्वेद संहिता ऋग्वैदिक काल की एकमात्र रचना है। इसमें 10 मंडल (Division) तथा 1028 सूक्त (Hymns) है। इसकी रचना 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के मध्य हुई। इसके कुल 10 मंडलो में से दूसरे से सातवें तक के मंडल सबसे प्राचीन माने जाते है, जबकि प्रथम तथा दसवां मंडल परवर्ती काल के माने गए है। ऋग्वेद के दूसरे से सातवें मंडल को गोत्र मंडल (Clan Divison) के नाम से भी जाना जाता है क्योकि इन मंडलो की रचना किसी गोत्र (Clan) विशेष से संबंधित एक ही ऋषि (Saga) के परिवार ने की थी। ऋग्वेद की अनेक बातें फ़ारसी भाषा के प्राचीनतम ग्रन्थ अवेस्ता (Avesha) से भी मिलती है। गौरतलब है कि इन दोनों धर्म में ग्रंथो में बहुत से देवी-देवताओ और सामजिक वर्गो के नाम भी मिलते-जुलते है। ऋग्वैदिक काल के भौगोलिक विस्तार तथा बस्तियों की स्थापना के संबंध में जानकारी के लिए मूल रूप से ऋग्वेद (Rigveda) पर ही निर्भर रहना पड़ता है, क्योकि पुरातात्विक साक्ष्यों में प्रमाणिकता का नितांत अभाव है।

ऋग्वेद में आर्य निवास-स्थल के लिए सप्तसैंधव क्षेत्र का उल्लेख मिलता है, जिसका अर्थ है- सात नदियों का क्षेत्र। इन सात नदियों की पहचान के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है, फिर भी यह माना जा सकता है कि आधुनिक पंजाब के विस्तृत भूखंड को 'सप्तसैंधव' कहा गया है। त्रिग्वेद से प्राप्त जानकारी के अनुसार आर्यो का विस्तार अफगानिस्तान, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक था। सतलुज से यमुना नदी तक का क्षेत्र 'ब्रहावर्त' कहलाता था जिसे ऋग्वैदिक सभ्यता का केंद्र (Centre of Rigvedic Civilization) माना जाता था। ऋग्वैदिक आर्यो की

पूर्वी सीमा हिमालय और तिब्बत, उत्तर में वर्तमान तुर्कमेनिस्तान, पश्चिम में अफगानिस्तान तथा दक्षिण में अरावली तक विस्तृत थी।

सामाजिक व्यवस्था

ऋग्वैदिक काल का समाज एक जनजातीय या कबायली समाज (Tribal Society) था जहाँ सामाजिक संरचना का आधार जनमूलक सिद्धांत (Kinship) था। इस सिद्धांत के तहत कुटुम्बों की शब्दावली साधारण होती थी । पुत्र और पुत्री के लिए अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया जाता था, परन्तु अन्य रिश्ते, जैसे भाई, भतीजे, चचेरे भाई आदि के लिए एक ही शब्द का प्रयोग किया जाता था, जिसके लिए ऋग्वेद में 'नृप्त' शब्द का उल्लेख मिलता है।

ऋग्वैदिककालीन समाज कई इकाइयों (Units) में बँटा हुआ था। इनके समाज की लघुतम इकाई कुल अर्थात परिवार (Family) होता था। इसके अलावा इसमें अन्य इकाइयों के रूप में ग्राम (Village), विश एवं जन का उल्लेख भी हुआ है। विश में अधिक इकाइयाँ सम्मिलित होती थी। जिसका अर्थ एक वंश या संपूर्ण जाति से लगाया जाता था। इसके महत्व का पता इस बात से चलता है कि ऋग्वेद में विश (Clan) का 171 बार और जन (Commonage) का 275 बार उल्लेख हुआ है। संभवत: यह शब्द संपूर्ण जनजाति को संबोधित करता था, परंतु विश और जन के परस्पर संबंधो के बारे में कहीं स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता।

ऋग्वैदिक काल में भूमि पर 'जन' का सामुदायिक नियंत्रण स्थापित था क्योकि भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार का कोई साक्ष्य नहीं प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद में शिल्प (Craft) विशेषज्ञों का अपेकक्षाकृत कम वर्णन मिलता है। वर्णित शिल्पी समूहों में मुख्य रूप से चर्मकार, बढ़ाई, धातुकर्मी। कुम्हार आदि के नाम का उल्लेख है। इस काल की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इन शिल्पी समूहों में से किसी को भी निम्न स्तर का नहीं माना जाता था। ऐसा संभवत: इस कारण था कि कुछ शिल्पकार, जैसे बढ़ाई (Carpenter) आदि की समसामयिक शिल्पों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी, जो कि युद्ध एवं दैनिक जीवन की आवश्यकताओ के लिए बेहद महत्वपूर्ण माने जाते थे। ऋग्वेद में बढ़ई, रथकार, चर्मकार आदि शिल्पियों का उल्लेख मिलता है। तथा अर्थात बढ़ई संभवत: शिल्पियों का मुखिया होता था।

'अयस' नामक शब्द का भी ऋग्वेद में प्रयोग हुआ है, जिसकी पहचान संभवतः ताँबे (Copper) और काँसे (Bronze) के रूप में की गयी है, किन्तु इस काल के लोग लोहे (Iron) से परिचित नहीं थे। इन शिल्पों के अतिरिक्त, बुनाई (Weaving) एक घरेलू शिल्प था जो कि घर के कामकाज में लगी महिलाओं के द्वारा संपादित किया जाता था। इस कार्य हेतु संभवत: भेड़ो से प्राप्त ऊन का प्रयोग किया जाता है।

यधपि 'समुंद्र' शब्द का प्रयोग हो ऋग्वेद में हुआ है, परंतु यह इस बात की ओर संकेत नहीं करता कि इस काल के आर्य जन व्यापार ओर वाणिज्य से परिचित थे। इस शब्द का प्रयोग संभवत: जल के जमाव, अगाध जलराशि के लिए हुआ है, न कि समुद्र के लिए। ऋग्वैदिककालीन

अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से वस्तु- विनिमय प्रणाली (Barter System) पर आधारित थी क्योंकि व्यापार का सर्वथा अभाव था।

ऋग्वैदिककालीन समाज संभवतः पितृसत्तात्मक (Patriarchal) था। यह व्यवस्था संयुक्त परिवार प्रणाली (Saint Family System) पर आधारित थी। परिवार में पुत्र का जन्म शुभ माना जाता था, जिसके लिये लोग प्रार्थना, कामना और अनुष्ठान किया करते थे।

ऋग्वैदिककाल में महिलाओं की स्थिति

1. महिलाएं सभा और विदथ में पुरुषों के साथ शामिल होने के लिए स्वतंत्र थी।

2. महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। लड़कियों के लिए शादी की उम्र 16-17 साल थी।

3. उस समय विधवा पुनर्विवाह और नियोगी (लेविरैट) प्रथा का भी चलन था। नियोगी (लेविरैट) प्रथा में निःसंतान विधवा एक बेटे के जन्म तक अपने देवर के साथ रहती थी।

4. उस समय "बहुविवाह" और "एकल विवाह" दोनों का चलन था।

इस काल के अंत में वर्ण-व्यवस्था (Caste System) बाहर आयी, जो कि संभवत: आर्यों और अनार्यों के बीच अंतर के क्रमिक विकास का परिणाम था। इसका उल्लेख ऋग्वेद के दसवें मंडल के पुरुषसूक्त में मिलता है। इस मण्डल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की उत्पत्ति का उल्लेख प्रथमतः स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है।

ऋग्वेद के आरंभ में तीन वर्णों का उल्लेख है- ब्रह्म, क्षत्र तथा विश। इस काल में समाज में बाल-विवाह नहीं था, परंतु अंतर्जातीय विवाह (Inter-Caste Marriages) होते थे।

ऋग्वैदिककालीन नदियाँ

नदी	प्राचीन नाम
सिन्ध	सिन्धु
व्यास	विपाशा
झेलम	वितस्ता
चेनाब	आस्किनी

घग्गर	दृशदती
रावी	परुष्णी
सतलज	शतुद्री
गोमल	गोमती
काबुल	कुम्भ
गंडक	सदानीरा
कुर्रम	क्रुमु

वैदिक काल आर्थिक व्यवस्था

ऋग्वैदिक काल की अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तम्भ पशुचारण था।

पशुओं की प्राप्ति के लिये विभिन्न प्रकार की प्रार्थनाएँ एवं अनुष्ठान किये जाते थे। अर्थात पशु आय के मुख्य साधन थे।

गाय का इन पशुओं में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान था और यह संपत्ति की प्रमुख स्रोत तथा माप थी। इसे अघन्या अर्थात् न मारे जाने योग्य भी कहा गया है।

ऋग्वेद में कृषि से संबंधित प्रक्रिया का वर्णन चतुर्थ मंडल में मिलता है। ऋग्वैदिक अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान गौण (Secondary) था, ऋग्वेद में फसल के रूप में सिर्फ 'यव' का उल्लेख मिलता है।

ऋग्वैदिक काल में भूमि पर 'जन' का सामुदायिक नियंत्रण स्थापित था क्योंकि भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार का प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है।

Vedic age coin 'अयस' नामक शब्द का भी ऋग्वेद में प्रयोग हुआ है, जिसकी पहचान ताँबे (Copper) और काँसे (Bronze) के रूप में की गई है, किंतु इस काल के लोग लोहे (Iron) से परिचित नहीं थे।

ऋग्वैदिक अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से वस्तु-विनिमय प्रणाली (Barter System) पर आधारित था।

वैदिक काल राजनीतिक व्यवस्था

ऋग्वैदिक काल में राज्य का मूल आधार परिवार था। परिवार का मुखिया 'कुलप' कहलाता था जो की गोत्र से सम्बंधित होता था और गोत्र को केंद्र मानकर ग्राम का निर्माण होता था अनेक ग्राम से मिलकर विश बनाया जाता था, जिसका प्रधान 'विशपति' होता था। विश से जन बनता था, जो कि सबसे बड़ी राजनीतिक इकाई थी और जिसका प्रधान राजा (King) होता था। शुरुआत में राजा सामान्यतः सैनिक नेता होता था, जिसे बलि अर्थात् एक प्रकार का कर (Tax) प्राप्त करने का अधिकार होता था।

कबीलों के आधार पर बने बहुत से संगठनों का ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है, जैसे- सभा, विदथ, समिति एवं गण। ये संगठन सैनिक / धार्मिक कार्य देखते थे एवं राजा के ऊपर नियंत्रण रखने में योगदान करते थे। उत्तर वैदिक काल (Later Vedic Age) की रचना अथर्ववेद (Atharvaveda) में इन्हें 'प्रजापति की दो पुत्रियाँ' कहा गया है।

दाशराज्ञ युद्ध: दस राजाओं के साथ युद्ध

आर्यों का सबसे प्रसिद्ध कबीला संघर्ष (Tribal Conflict) दाशराज्ञ युद्ध के रूप में वर्णित है, जो परुष्णी (रावी) नदी के तट पर हुआ था। भरत जन के गुरु विश्वामित्र थे, परंतु बाद में वशिष्ठ गुरु हो गए। अतः क्रोध में आकर विश्वामित्र ने भरत जन के विरोधियों को समर्थन दिया। इस युद्ध में भरत के विरोध में पाँच आर्य एवं पाँच अनार्य कबीले मिलकर संघर्ष कर रहे थे। अंत में इस युद्ध में भरत राजा सुदास की जीत हुई। इस युद्ध का वर्णन ऋग्वेद में विस्तार से किया गया है।

राजकाज एवं प्रशासन में कुछ अधिकारी राजा की सहायता करते थे। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण पुरोहित होता था। इसके अतिरिक्त, सेनानी, वाजपति (चारागाह का अधिकारी), ग्रामणी, स्पश (जासूस) आदि होते थे।

ऋग्वेद में किसी भी प्रकार के न्यायाधिकारी (Judicial Officer) का उल्लेख नहीं है।

राजा कोई नियमित या स्थायी सेना नहीं रखता था, लेकिन युद्ध के समय वह आम जनमानस सेना संगठित कर लेता था ।

वैदिक काल धर्म

ऋग्वैदिककालीन लोग पूर्णतः ईश्वरवादी थे। यह आध्यात्मिक और वैज्ञानिक आधार पर देवों की पूजा करते थे। वैदिक आर्य एकेश्वरवादी (Monotheism) थे।

ऋग्वैदिक देवताओं की कुल संख्या 33 बताई गई है, जो ब्रह्माण्ड (Universe) के तीन भागों- पृथ्वी, आकाश एवं अंतरिक्ष- के अनुरूप ही तीन भागों में विभाजित हैं, परंतु इनका कोई वरीयता

क्रम नहीं है। ऋग्वैदिक देवताओं (Gods) में इन्द्र, अग्नि, वरुण, सोम, सविता, सूर्य, मरुत, विष्णु, पर्जन्य, ऊषा आदि 11 देवता प्रमुख हैं। ऋग्वेद के सूक्तों (Hymms) में प्रायः इन्हीं देवताओं की स्तुति प्रमुख रूप से की गई है।

ऋग्वेद में सबसे महत्त्वपूर्ण देवता इंद्र को 'पुरुन्दर' भी कहा गया है। उन्हें वर्षा का देवता (Rain God) भी माना गया है। ऋग्वेद में इंद्र की स्तुति में 250 सूक्त हैं। इंद्र को रथेष्ट, विजयेन्द्र, सोमपाल, शतक्रतु, वृत्रहन एवं मधवा भी कहा गया है। ऋग्वेद के दूसरे महत्त्वपूर्ण देवता अग्नि (Fire) हैं।

ऋग्वैदिककालीन लोगों अर्थात आर्यो का धर्म बड़ा सरल था। वे लोग पूर्णत: ईशवरवादी (Deist) थे। उन्होंने प्रकृति-संबंधी विचारों का आध्यात्मिक (Spiritual) आधार पर प्रतिपादन किया, न कि वैज्ञानिक (Scientific) आधार पर। ऋग्वैदिक आर्य सांसारिक समृद्धि और सन्मार्ग प्रदर्शन के लिए देवों (Gods) की आराधना मूर्तियों के माध्यम से नहीं होती थी, बल्कि स्तुति-पाठ (Panegyric) अथवा यज्ञ (Oblation) के लिए प्रज्ज्वलित अग्नि में दूध, घी, सोम, मधु और अन्न की मंत्र सहित आहुति (offering) द्वारा होती थी।

- पृथ्वी स्थान के देवता (Gods of Earth): अग्नि, सोम, पृथ्वी, बृहस्पति, सरस्वती आदि।
- वायुस्थान या आकाश के देवता (God of Air): सूर्य, धौस, वरुण, मित्र, पूषन, विष्णु, सवितृ, उषा आदि।
- द्रिआकाशीय (अंतरिक्ष) देवता (Gods of Space): इंद्र, मरुत, वायु, पर्जन्य आदि।

उत्तर वैदिक काल (1000 - 600 ई.पू.)

उत्तर वैदिक काल के दौरान आर्यों का यमुना, गंगा और सदनीरा के सिंचिंत उपजाऊ मैदानों पर पूर्ण नियंत्रण था। उन्होंने विंध्य को पार कर लिया था और गोदावरी के उत्तर में, डेक्कन में जा बसे थे। उत्तर वैदिक काल के दौरान लोकप्रिय सभाओं का महत्व समाप्त हो गया था एवं इसकी कीमत उन्हें शाही सत्ता की वृद्धि के रूप में चुकानी पड़ी थी। दूसरे शब्दों में कहें तो साम्राज्य के लिए राजशाही का रास्ता साफ हो चुका था। बड़े राज्यों के गठन से राजा और अधिक शक्तिशाली हो गया था।

उत्तर वैदिक काल के दौरान (1000-600 ईसा पूर्व) आर्यों का यमुना, गंगा और सदनीरा जैसे सिंचिंत उपजाऊ मैदानों पर पूर्ण नियंत्रण था।

उत्तरकालीन युग में आर्थिक जीवन

• वैदिक लेखों में समुद्र व समुद्री यात्राओं का उल्लेख है । यह ये दर्शाता है कि वर्तमान का समुद्री व्यापार आर्यन के द्वारा शुरु किया गया था ।

• धन उधार देना एक फलता फूलता व्यापार था । श्रेस्थिन शब्द यह बताता है कि इस युग में सम्पन्न व्यापारी थे और शायद वे सभा के रूप में संगठित थे ।

• आर्यन ने सिक्कों का प्रयोग नहीं किया परंतु सोने की मुद्राओं के लिए विशेष सोने के वज़नों का प्रयोग किया गया । सतमाना, निष्का, कौशांभी, काशी और विदेहा प्रसिद्ध व्यापारिक केंद्र थे

• जमीन पर बैल गाड़ी का प्रयोग सामान ले जाने के लिए किया जाता था । विदेशी सामान के लिए नावों और समुद्री जहाजों का प्रयोग किया जाता था ।

• चाँदी का इस्तेमाल बढ़ गया था और उससे आभूषण बनाए जाते थे ।

उत्तरकालीन वैदिक युग में सामाजिक जीवन

• समाज 4 वर्णों में विभाजित था: ब्राह्मण, राजन्य या क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ।

• प्रत्येक वर्ण का अपना कार्य निर्धारित था जिसे वे पूरे रीति रिवाज के साथ करते थे । हर एक को जन्म से ही वर्ण दे दिया जाता था ।

• गुरुओं के 16 वर्गों मे से एक ब्राह्मण होते थे परंतु बाद में दूसरे संत दलों से भी श्रेष्ठ हो जाते थे । इन्हे सभी वर्गों में सबसे शुद्ध माना जाता था और ये लोग अपने तथा दूसरों के लिए बलिदान जैसी क्रियाएँ करते थे ।

• क्षत्रिय शासकों और राजाओं के वर्ग में आते थे और उनका कार्य लोगों की रक्षा करना और साथ ही साथ समाज में कानून व्यवस्था बनाए रखना होता था ।

• वैश्य लोग आम लोग होते थे जो व्यापार, खेतीबाड़ी और पशु पालना इत्यादि का कार्य करते थे । मुख्यतः यही लोग कर अदा करते थे ।

• यद्यपि सभी तीनों वर्णों को उच्च स्थान मिला था और ये सभी पवित्र धागे को धारण कर सकते थे, पर शूद्रों को ये सभी सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं और इनसे भेदभाव किया जाता था।

• पैतृक धन पित्रसत्तात्मक का नियम था जैसे चल अचल संपत्ति पिता से बेटे को चली जाती थी । औरतों को ज़्यादातर निचला स्थान दिया जाता था । लोगों ने गोत्र असवारन विवाह का चलन चलाया । एक ही गोत्र के या एक ही पूर्वजों के लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते थे।

वैदिक लेखों के अनुसार जीवन के चार चरण या आश्रम थे : ब्रह्मचारी या विद्यार्थी, गृहस्थ, वनप्रस्थ या आधी निवृत्ति और सन्यास या पूर्ण निवृत्ति।

प्रशासन

• पूर्व वैदिक आर्यन जाति में संगठित रहते थे ना की राज्यों के रूप में जाति के मुखिया को राजन कहते थे । राजन की अपनी स्वायत्तता उसकी जाति की सभा में प्रतिबंधित थी जिसे सभा या समिति कहा जाता था ।

• राजन उनकी सहमति के बिना सिंहासन पर नहीं बैठ सकता था । सभा, जाति के कुछ प्रमुख लोगों की होती थी जबकि समिति में जाति का हर एक आदमी होता था ।

• राजन को समाज के संरक्षक के रूप में देखा जाता था। वंशानुगत शासन उभरना शुरू हुआ और जिसके फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई जैसे रथ दौड़, पशु की छाप और पासों का खेल जो की पहले निश्चय करते थे कि कौन राजा बनने योग्य है, बिलकुल भी महत्वपूर्ण नहीं थे । इस युग के रीति-रिवाज राजा के दर्जे को लोगों से ऊपर रखते थे । उसे प्रायः सम्राट कहा जाता था

• राजन की बड़ी हुई राजनीतिक ताकतों ने उसे उत्पादिक संसाधनों पर नियंत्रण करने की ताकत दे दी थी । ऐच्छिक रूप से दिया गया उपहार अनिवार्य भेंट बना दिया गया हालांकि कर के लिए कोई व्यवस्थित प्रणाली नहीं थी ।

• उत्तरकालीन वैदिक युग के अंत में, विभिन्न प्रकार की राजनीतिक ताकतों जैसे राज्य, गण राज्य और जातिय रियासतों का भारत में उत्थान हुआ ।

उत्तरकालीन वैदिक ईश्वर

• सबसे महत्वपूर्ण वैदिक ईश्वर, इंद्र और अग्नि ने अपनी महत्वता खो दी और इनके स्थान पर प्रजापति, विधाता की पूजा होने लगी ।

• कुछ सूक्ष्म भगवान जैसे रुद्र, पशुओं के देवता और विष्णु, मनुष्य का पालक और रक्षक प्रसिद्ध हो गए ।

रीति-रिवाज और दर्शन शास्त्र

• बलिदान, प्रार्थनाओं से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए और वे दोनों प्रजा और स्वदेशी को अपनाते थे। जबकि लोग परिवार के बीच में ही बलिदान करते थे, जन बलिदान में राजा और उसकी प्रजा शामिल होते थे ।

• यज्ञ या हवन करना उनके मुख्य धार्मिक कार्य होते थे । रोज़ाना के यज्ञ साधारण होते थे और परिवारों के बीच में ही होते थे ।

• रोज़ के यज्ञों के अलावा वे त्योहार के दिनों में ख़ास यज्ञ करते थे । कभी कभार इन मौकों पर जानवरों का भी बलिदान दिया जाता था ।

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म प्राचीनतम धर्मों में से एक धर्म है, बौद्ध धर्म के संस्थापक महान महात्मा गौतम बुद्ध थे। महात्मा बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु के लुम्बिनी नामक नामक ग्राम में 563 ईसा पूर्व में हुआ था। वर्तमान में कपिलवस्तु नेपाल देश में स्थित है।

गौतम बुद्ध के पिता राजा शुद्धोधन तथा माता महामाया थी, इनकी माता की मृत्यु के पश्चात बुद्ध का पालन-पोषण माता गौतमी द्वारा किया गया था। गौतमी और महामाया सगी बहने थी, इसलिए गौतमी बुद्ध की मौसी और दत्तक मां दोनों थी।

गौतम बुद्ध के बचपन का नाम सिद्धार्थ था। इनका विवाह 16 वर्ष की आयु में ही हो गया था। महात्मा बुद्ध की पत्नी का नाम यशोधरा तथा पुत्र का नाम राहुल था।

बौद्ध धर्म के प्रतीक:

घटना	प्रतीक
जन्म	कमल एवं साँड
गृह त्याग	घोड़ा
ज्ञान	पीपल (बोधि वृक्ष)
निर्वाण	पद -चिन्ह
मृत्यु	स्तूप

बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग :

1. सम्यक् दृष्टि - सत्य एवं असत्य का समझ बोध, वास्तविकता समझ की शक्ति।
2. सम्यक् संकल्प - दृढ निचय के साथ जीवन यापन।

3. सम्यक् वाक् - वाणी को सत्य एवं पवित्र होना चाहिये, अर्थात मुनष्य के बोल पाप, छल और असत्य विहीन होने चाहिये।
4. सम्यक् कर्मान्त - सत्कर्म (अच्छे) कर्म, मनुष्य का चाल-चलन अच्छा व बुराई और पाप से दूर होना चाहिये।
5. सम्यक् आजीव - न्यायपूर्ण जीवनयापन करना, किसी के साथ छल करके या उसका हक़ मारकर जीवनयापन नहीं करना चाहिये।
6. सम्यक् व्यायाम - शुभ विचारों की उत्पत्ति करना व पाप, छल-कपट से दूर रहना, व गलत कर्मों के दुष्परिणाम को समझना।
7. सम्यक् स्मृति - चित्त-एकाग्र एवं द्वेष रहित मन ही स्वयं को जान सकता है। गलत चीज़ों से दूर रहना।
8. सम्यक् समाधि - मन को एकाग्रचित्त होना चाहिये।

बौद्ध धर्म के आर्य सत्य:

(1) दु:ख

(2) दु:ख समुदाय

(3) दु:ख निरोध

(4) दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपदा

बौद्ध मत के तीन प्रमुख अंग थे – बौद्ध, संघ एवं धम्म। इनकों त्रिरत्न भी कहा जाता है।

बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेशों को बौद्ध धर्म में 'धम्म' कहा गया है। तथा बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के संगठनको 'संघ' कहा बुद्ध, आत्मा और ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते थे। परन्तु जैन धर्म की ही भाँति बौद्ध धर्म भी पुनर्जन्म में विश्वास करता था।

बौद्ध धर्म में तीन सम्प्रदाय 'हीनयान, महायान एवं वज्रयान' हैं। हीनयान का अर्थ है – निकृष्ट या निम्न मार्ग। हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायियों का मुख्य लक्ष्य बुद्धत्व न होकर 'अर्हत' पद की प्राप्ति था।

कुषाण काल में बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों 'हीनयान एवं महायान' में विभाजित हो गया। हीनयान सम्प्रदाय के लोग पाली भाषा का प्रयोग करते थे, जबकि महायान सम्प्रदाय के लोग संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे।

प्रथम बौद्ध संगीति के अध्यक्ष महाकश्यप थे। और तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन पाटिलीपुत्र में महान मौर्य शासक अशोक द्वारा किया गया था। बुद्ध के निर्वाण के दो सौ वर्षों बाद मौर्य शासक अशोक ने अपने 'धर्ममहामात्रों' के द्वारा बौद्ध धर्म को मध्य एशिया, पश्चिमी एशिया और श्रीलंका में फैलाया तथा इसे एक विश्व व्यापी धर्म बनाया।

बौद्ध सभाएँ (संगीति)

सभा	समय	स्थान	अध्यक्ष	शासनकाल
प्रथम	483 ई.पू.	राजगृह	महाकश्यप	अजातशत्रु
द्वितीय	383 ई.पू.	वैशाली	सबाकामी	कालाशोक
तृतीय	255 ई.पू.	पाटलिपुत्र	मोग्गलिपुत्त तिस्स	अशोक
चतुर्थ	प्रथम शताब्दी	कुंडलवन	वसुमित्र/अश्वघोष	कनिष्क

चतुर्थ बौद्ध संगीति के बाद बौद्धधर्म दो भागों हीनयान और महायान में विभाजित हो गया।

साहित्य-

'जातक' में बुद्ध की पूर्वजन्म की कहानियां वर्णित है । हीनयान का प्रमुख ग्रंथ 'कथावस्तु' है, जिसमें महात्मा बुद्ध का जीवन चरित्र अनेक कथानक के साथ वर्णित है । बुद्ध के सम्बन्ध में नैतिक शिक्षा प्रदान कराने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जातक कथाएँ, जो बुद्ध के पूर्व जन्म तथा बुद्धकालीन धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर आधारित है। जातक कथाएँ पाली भाषा में लिखी गई हैं। क्यूंकि उस समय सामान्य बोलचाल की भाषा पाली ही थी। बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द महाकाव्य संस्कृत भाषा में अश्वघोष द्वारा लिखित है। सारिपुत्र प्रकरण एक नाटक ग्रन्थ है जो महाकवि अश्वघोष द्वारा संकृत भाषा में लिखी गयी है। बौद्ध साहित्य मुख्यतः त्रिपिटिकों में समाहित है। यह बौद्ध धर्म का प्रमुख ग्रंथ है, जिसे सभी बौद्ध सम्प्रदाय मानते है। यह पाली भाषा में लिखित है। इसमें 17 ग्रंथो का समावेश है। ये त्रिपिटक हैं – सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक तथा विनय पिटक।

सुत्तपिटक बुद्ध के धार्मिक उपदेशों का संग्रह है। सुत्त पिटक में तर्क और संवादों के रूप में भगवान बुद्ध के सिद्धांतों का संग्रह है। जिसमें छोटी-छोटी कई प्राचीन कहानियाँ लिखी हैं।

विनयपिटक में बौद्ध संघ के नियमों का वर्णन है। विनय पिटक का शाब्दिक अर्थ "अनुशासन की टोकरी" है। इसका प्रमुख विषय भिक्षु और भिक्षुणियों के लिये अनुशासन में रहने सम्बन्धी नियम लिखे गए हैं।

अभिधम्मपिटक में बौद्ध दर्शन की चर्चा है। अभिधम्मपिटक में सात ग्रंथ हैं - धम्मसंगणि, विभंग, जातुकथा, पुग्गलपंत्ति, कथावत्थु, यमक और पट्ठान।

महत्मा बुद्ध की मृत्यु को बौद्ध ग्रन्थों में 'महापरिनिर्वाण' के नाम से जाना जाता है। महात्मा बुद्ध की मृत्यु 80 वर्ष की आयु में 483 ईसा पूर्व में उत्तर प्रदेश के कुशीनगर नामक स्थल पर हुई थी। एक किंवदन्ती के अनुसार मृत्यु के बाद बुद्ध के शरीर के अवशेषों को आठ भागों में बांटकर उन पर आठ स्तूपों का निर्माण कराया गया। आठ स्तूप हैं - मगध, वैशाली, कपिलवस्तु, अलकप्प, रामागम, बेठद्वीप, पावा और कुशीनगर।

महात्मा बुद्ध ने अपना अन्तिम उपदेश 'सुमच्छ' को दिया था।

बौद्ध संघ में प्रवेश करने वाली प्रथम महिला बुद्ध की सौतेली माता 'गौतमी प्रजापति' थी।

हीनयान और महायान के बीच अंतर

हीनयान	महायान
हीनयान दोनों यानों में अधिक पुराना है	महायान के बारे में कहा जाता है कि वह पहली शताब्दी ई.पू. उभर कर आया
मुख्य रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया (वियतनाम छोड़कर) में फैला हुआ है	इसका प्रचार भारत के उत्तर में अधिक है, जैसे - तिब्बत, चीन, मंगोलिया, जापान, उ.कोरिया आदि।
हीनयान में बुद्ध को शाक्यमुनि के रूप में जाना जाता है	महायान में बुद्ध एक भगवान् हैं जिनके कई पिछले जन्मों के रूप (बोधिसत्व) हैं और भविष्य में भी कई बुद्ध होने की कल्पना है, जैसे - मैट्रैक
हीनयान अनित्यता, दु:खता और अनात्मता को मानता है	महायान आगे बढ़कर इसमें शून्यता जोड़ता है।
हीनयान से साधक को व्यक्तिगत निर्वाण की प्राप्ति होती है	महायान का आदर्श समस्त संसार को मुक्त कराने का है।
हीनयान पुद्गल-शून्यता को मानता है	महायान धर्म-शून्यता को
हीनयान में छह पारमिताएँ बतलाई गई हैं	महायान में दस पारमिताओं का बारम्बार वर्णन है।

हीनयान में ध्यान-योग का महत्त्व है	महायान करुणा-प्रधान है। बोधिसत्व का लक्ष्य केवल अपनी बुद्धत्व को प्राप्त करना नहीं, किन्तु सहस्त्र प्राणियों को बुद्धत्व का लाभ कराना है। इसलिए महायान में असंख्य बुद्धों और बोधिसत्वों की कल्पना की गई है और बोधि-चित्त की प्राप्ति के लिए मार्ग बतलाया गया है। दस भूमियाँ - मुदिता, विमला, प्रभाकारी, अचिंष्म्ती, सुदुर्जया, अभिमुक्ति, दूरंगमा, अचला, साधुमति, धर्ममेध महायान की विशेष देन हैं इसका वर्णन हीनयान में नहीं के बराबर है।
बुद्धों की विशेषताएँ यथा - दस बल, चार वैशारद्य, बत्तीस महापुरुष - लक्षण, अस्सी अनुव्यंजन, अष्टादश आवेणिक धर्म यद्यपि हीनयान में भी मिलते हैं	महायान में इनका विशेष वर्णन किया गया है और इनकी प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करने को कहा गया है।
हीनयान में अर्हत्व पद एक गौरवपूर्ण पद माना गया है। स्वयं भगवान् बुद्ध भी अर्हत् कहे गये हैं	महायान में प्रज्ञापारमिता की प्राप्ति की बहुत प्रशंसा की गई है। महायान प्रत्येकबुद्ध और श्रावक को हीन दृष्टि से देखता है। "श्रावक" और "अर्हत्" शब्द का प्रयोग महायान में समान रूप में किया गया है। महायान में सम्यक सम्बोधि ही चरम लक्ष्य मानी गई है। महायान आत्मार्थ को छोड़कर परार्थ की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है
हीनयान में ध्यान आदि साधनाओं पर अधिक जोर दिया गया है	महायान में बुद्धों की पूजा का विशेष वर्णन मिलता है
हीनयान में साधक निर्वाण-प्राप्ति से ही संतुष्ट हो जाता है	महायान में बुद्ध-ज्ञान, सर्वज्ञता, अनुत्तरज्ञान या "सम्बोधि" जिसे "तथता" भी कहा गया है, उनके लिए सत्व प्रयत्नशील होता है
हीनयान का परमार्थ महायान के लिए संवृति-सत्य है	महायान का परमार्थ सत्य या परिनिषपन्न सत्य तो केवल धर्म-शून्यता है

हीनयान शील और समाधि-प्रधान है	महायान करुना और प्रज्ञा-प्रधान है

जैन धर्म

जैन का शाब्दिक अर्थ कर्मों का नाश करनेवाला और 'जिन भगवान' के अनुयायी। जैन धर्म ने गैर-धार्मिक विचारधारा के माध्यम से रूढ़िवादी धार्मिक प्रथाओं पर जबरदस्त प्रहार किया। जैन धर्म लोगों की सुविधा हेतु मोक्ष के एक सरल, लघु और सुगम रास्ते की वकालत करता है। अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है। जैन दर्शन में सृष्टिकर्ता कण कण स्वतंत्र है इस सृष्टि का या किसी जीव का कोई कर्ता धर्ता नही है।

महावीर स्वामी का जन्म वैशाली के निकट कुण्डग्राम के ज्ञातृक कुल के प्रधान **सिद्धार्थ** के यहां 540 ई.पू. में हुआ, इनकी माता त्रिशला(लिच्छवी राजकुमारी) थी। इनकी पत्नी का नाम यशोदा था। जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हुए हैं जिनमें से महावीर स्वामी 24 वें तीर्थंकर थे। महावीर स्वामी **जैन धर्म** के वास्तविक संस्थापक थे।इनका वास्तविक नाम वर्द्धमान था। इनका गौत्र कश्यप था। वर्द्धमान के बड़े भाई का नाम नंदिवर्धन था तथा बहिन का नाम सुदर्शना था। इनके एक बेटी भी थी, जिसका नाम अयोज्या(अनविद्या) था। इनकी पुत्री को प्रियदर्शना नाम से भी जाना जाता है। प्रियदर्शना का विवाह जामालि से हुआ था, जामालि महावीर का प्रथम शिष्य था।

30 वर्ष की आयु में गृह त्याग कर 12 वर्ष की कठोर तपस्या में संलग्न रहने के बाद 42 वर्ष की आयु में महावीर को जुम्भियग्राम के निकट ऋजुपालिका नदी के तट पर **साल वृक्ष** के नीचे कैवल्य (सर्वोच्च ज्ञान) प्राप्त हुआ। कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति के बाद महावीर स्वामी को कई नामों से जाना जाने लगा जैसे **- कैवलीन, जिन (विजेता), निर्ग्रन्थ (बंधन रहित), महावीर, अर्हत (योग्य)।**

महावीर स्वामी के पंचमहाव्रत:

- अहिंसा,
- सत्य,
- अस्तेय,
- अपरिग्रह,
- ब्रह्मचर्य।

त्रिरत्न:

सम्यक् दर्शन - यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा ही सम्यक दर्शन है।

सम्यक् ज्ञान - सत्य व असत्य का अंतर ही सम्यक ज्ञान है।

सम्यक् चरित्र - अहितकर कार्यों का निषेध तथा हितकारी कार्यों का आचरण ही सम्यक चरित्र है।

जैन सभाएँ

पहली जैन सभा - प्रथम जैन सभा 300 ई.पू. में पाटलिपुत्र में स्थूलभद्र एवं संभूति विजय के नेतृत्व में हुई थी। इसी जैन सभा के बाद जैन धर्म दो भागों में विभाजित हो गया, जो श्वेताम्बर (सफेद कपड़े पहनते हैं) एवं दिगंबर (जो एकदम नग्नावस्था में रहते हैं) के नाम से जाने गये। चौथी शताब्दी के अंत में दक्षिण बिहार में भयंकर अकाल पड़ा, तब जैनों का एक भाग भद्रबाहु के नेतृत्व में मैसूर चला गया तथा दूसरा भाग स्थूलबाहु के नेतृत्व में पाटलिपुत्र में रह गया। भद्रबाहु के अनुयायी श्वेताम्बर कहलाए तथा स्थूलबाहु के अनुयायी दिगम्बर कहलाए। राजाओं में उदायिन, बिन्दुसार और खारवेल जैन धर्म के समर्थक कहे जाते हैं। मथुरा और उज्जैन जैन धर्म के प्रधान केन्द्र थे।

दूसरी जैन सभा - द्वितीय जैन संगीति का आयोजन 513 ई.पू. वल्लभी (गुजरात) नामक स्थान पर देवर्धि क्षमा श्रवण की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई।

महावीर की शिक्षाएं

- महावीर ने वेदों के एकाधिकार को अस्वीकार किया और वैदिक अनुष्ठानों पर आपत्ति जताई।
- ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं किया तथा कर्म में विश्वास रखना और आत्मा का संचार और समानता पर बहुत जोर दिया।
- उन्होंने जीवन के नैतिक मूल्यों की वकालत की। उन्होंने कृषि कार्य को भी पाप माना था क्योंकि इससे पृथ्वी, कीड़े और जानवरों को चोट पहुँचती है।
- महावीर के अनुसार, तप और त्याग का सिद्धांत उपवास, नग्नता और आत्म यातना के अन्य-उपायों के अभ्यास के साथ जुड़ा हुआ है।

जैन धर्म का प्रसार

1. संघ के माध्यम से, महावीर ने अपनी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया, जिसमें महिलाएं और पुरुष दोनों शामिल थे।

2. चंद्रगुप्त मौर्य, कलिंग के शासक खारवेल और दक्षिण भारत के शाही राजवंश जैसे गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूट के संरक्षण में जैन धर्म का प्रसार हुआ।

3. जैन धर्म की दो शाखाएँ हैं- श्वेताम्बर (सफेद वस्त्र धारण करने वाला) और दिगम्बर (आकाश को धारण करने वाला या नंगा रहने वाला) ।

4. प्रथम जैन संगीति का आयोजन तीसरी शताब्दी ई.पू. में पाटलीपुत्र में हुआ था, जिसकी अध्यक्षता दिगम्बर मत के नेता स्थूलबाहू ने की थी।

5. द्वित्तीय जैन संगीति का आयोजन 5वीं शताब्दी ईस्वी में वल्लभी में किया गया था। इस परिषद में 'बारह अंगों' का संकलन किया गया था।

तेजस्विनावधीतमस्तु
अभ्युदय

महाजनपदों का उदय

महाजनपदों ने ईसा पूर्व छठी सदी में राज्य विस्तार किया। आर्य जातियों के परस्पर विलीनीकरण से जनपदों का विस्तार हुआ और महाजनपद बने। इसके साथ ही कला-कौशल की अभूतपूर्व अभिवृद्धि, धन-धान्य की समृद्धि, व्यापार-वाणिज्य का चमत्कारपूर्ण उत्कर्ष सामने आया। यही कारण है कि भारत के राजनैतिक इतिहास का प्रारम्भ छठी शताब्दी ई.पू. से माना जाता है।

छठी शताब्दी के आसपास पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार में लोहे के व्यापक प्रयोग के कारण अतिरिक्त उपज होने लगी तथा आर्थिक परिवर्तन हुए, जिसके कारण व्यापार एवं वाणिज्य को बल मिला। क्षत्रिय वर्ग की शक्ति में अपार वृद्धि हुई क्योंकि लोहे के हथियारों के प्रयोग होने लगे थे। इन परिवर्तनों के कारण ऋग्वैदिक कबीलाई जनजीवन में दरार पड़ने लगी और क्षेत्रीय भावना के जाग्रत होने से नगरों का निर्माण होने लगा।

कुल 16 महाजनपद थे, जिनका उल्लेख बौद्ध ग्रंथ 'अंगुतर निकाय', 'महावस्तु' एवं जैन ग्रंथ 'भगवती सूत्र' में मिलता है। मगध, कौशल, वत्स और अवंति इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली थे। सोलह महाजनपदों में अश्मक ही एक ऐसा जनपद था जो दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के किनारे स्थित था।

महाजनपद	राजधानी
1. काश	वाराणसी
2. कोशल	श्रावस्ती/अयोध्या (फैजाबाद मंडल)
3. अंग	चंपा (भागलपुर एवं मुंगेर)
4. मगध	राजगृह/गिरिब्रज (दक्षिणी बिहार)
5. वज्जि	वैशाली (उत्तरी बिहार)
6. मल्ल	कुशीनगर (प्रथम भाग) एवं पावा (द्वितीय भाग) (पूर्वी उत्तर प्रदेश का गोरखपुर-देवरिया क्षेत्र)
7. चेदि/चेति	सोत्थिवती/सुक्तिमति (आधुनिक बुंदेलखंड)
8. वत्स	कौशांबी (इलाहाबाद एवं बांदा)
9. पांचाल	उत्तरी पांचाल-अहिच्छत्र (रामनगर, बरेली) एवं दक्षिणी पांचाल-काम्पिल्य (फरूर्खाबाद)
10. मत्स्य	विराट नगर (अलवर), भरतपुर (राजस्थान)

11. शूरसेन	मथुरा (आधुनिक ब्रजमंडल)
12. अश्मक	पोतना या पोटली (दक्षिण भारत का एकमात्र महाजनपद)
13. अवंति	उत्तरी उज्जयिनी, दक्षिणी महिष्मती
14. गांधार	तक्षशिला, पेशावर तथा रावलपिंडी (पाकिस्तान)
15. कंबोज	राजपुर/हाटक (कश्मीर)
16. कुरू	इंद्रप्रस्थ (मेरठ तथा दक्षिण-पूर्व हरियाणा)

महाजनपदों का संक्षिप्त विवरण

'अंगुत्तर निकाय' में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

1. काशी

काशी महाजनपद की राजधानी वाराणसी थी।

2. कोशल

कोशल महाजनपद की राजधानी श्रावस्ती थी। रामायणकालीन कोशल राज्य की राजधानी अयोध्या थी।

3. मगध

मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह या गिरिब्रज थी। कालांतर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र स्थानांतरित हुई। यह उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद था।

4. वज्जि

यह आठ राज्यों का एक संघ था। इसमें वज्जि के अतिरिक्त वैशाली के लिच्छवि, मिथिला के विदेह तथा कुंडग्राम के ज्ञातृक विशेष रूप से प्रसिद्ध थे। बुद्ध के समय में यह शक्तिशाली संघ था।

5. वत्स

बुद्धकाल में यहां पौरव वंश का शासन था जिसका शासक उदयन था।

6. कुरू

बुद्ध के समय यहां का राजा कोरव्य था।

7. शूरसेन

बुद्धकाल में यहां का राजा अवंतिपुत्र था जो बुद्ध के प्रमुख शिष्यों में से एक था।

8. अश्मक

यह दक्षिण भारत का एकमात्र महाजनपद था, इसकी राजधानी पोतन या पोटली थी।

9. अवंति

यहां लोहे की खाने थी तथा लुहार इस्पात के उत्कृष्ट अस्त्र-शस्त्र निर्मित करते थे। इस कारण यह राज्य सैनिक दृष्टि से अत्यंत सबल हो गया।

सोलह जनपदों के अलावा बुद्धकाल में गंगाघाटी में कई गणतंत्रों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। **बुद्ध के समय में** 10 **गणतंत्र थे।**

मगध साम्राज्य का उत्कर्ष

यह बुद्ध काल तथा परवर्ती काल में उत्तरी भारत का सबसे शक्तिशाली और समृद्ध जनपद था।

इसकी स्थिति मूलतः दक्षिण बिहार के क्षेत्र में थी। इसके अन्तर्गत आधुनिक पटना एवं गया जिला शामिल थे। इसकी राजधानी गिरिब्रज थी। बाद में राजगृह बनी, जो पांच पहाड़ियों से घिरी थी।

भौगोलिक स्थिति

मगध की सीमा उत्तर में गंगा से दक्षिण में विंध्य पर्वत तक, पूर्व में चंपा से पश्चिम में सोन नदी तक विस्तृत थी।

विस्तृत उपजाऊ मैदान, कृषि में लोहे तथा नवीन तकनीक का प्रयोग, वन क्षेत्र एवं हाथियों की उपलब्धता, खनिज संसाधनों की उपलब्धता, व्यापार की अनुकूल दशा तथा प्राकृतिक सुरक्षा ने मगध के उत्कर्ष में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

हर्यक वंश (544 ई.पू. से 412 ई.पू.)

संस्थापक - बिम्बिसार

राजधानी - राजगृह या गिरिब्रज (पाटलिपुत्र)

बिम्बिसार (544 ई.पू. से 492 ई.पू.)

बिम्बिसार ने अपने राज्य की नींव विभिन्न वैवाहिक संबंधों के फलस्वरूप रखी और उसका विस्तार किया। उसने तीन विवाह किये। प्रथम पत्नी महाकोशला देवी थी, जो कोशलराज की पुत्री और प्रसेनजित की बहन थी। इनके साथ दहेज में काशी प्रान्त मिला, जिससे एक लाख की वार्षिक आय होती थी।

बिम्बिसार को वैवाहिक संबंधों से बड़ी राजनीतिक प्रतिष्ठा मिली और मगध को पश्चिम एवं उत्तर की ओर विस्तारित करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

बिम्बिसार ने अंग राज्य को जीतकर उसे मगध में मिला लिया तथा अपने पुत्र अजातशत्रु को वहां का शासक नियुक्त किया।

अजातशत्रु (492 ई.पू. से 460 ई.पू.)

इसके समय काशी व वैशाली दोनों मगध के अंग बन गए।

अजातशत्रु के समय में ही राजगृह की सप्तपर्णि गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ था।

उदायिन (460 ई.पू. से 444 ई.पू.)

पुराणों एवं जैन ग्रंथों के अननुसार उदयिन ने गंगा तथा सोन नदियों के संगम तट पर पाटलिपुत्र (कुसुमपुरा) नामक नगर की स्थापना की तथा उसे अपनी राजधानी बनाया। वह जैन मतानुयायी था।

हर्यक वंश का अंतिम राजा उदयिन का पुत्र नागदशक था। इसको उसके अमात्य शिशुनाग ने पदच्युत कर मगध की गद्दी पर अधिकार कर लिया और 'शिशुनाग' नामक एक नए वंश की नींव रखी।

शिशुनाग वंश (412 ई.पू. से 344 ई.पू.)

संस्थापक- शिशुनाग

इसी के नाम पर वंश का नाम 'शिशुनाग वंश' पड़ा।

शिशुनाग (412 ई.पू. से 394ई.पू.)

इसने अवंति तथा वत्स राज्य पर अधिकार कर उसे मगध साम्राज्य में मिला लिया। इसने वैशाली को राजधानी बनाया।

कालाशोक (394 ई.पू. से 366 ई.पू.)

इसी के समय द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन वैशाली में हुआ। इसी समय बौद्ध संघ दो भागों (स्थविर तथा महासांघिक) में बंट गया।

नंद वंश (344 ई.पू.से 324-23 ई.पू.)

संस्थापक - महापद्मनंद

महापद्मनंद

पुराणों के अनुसार, इस वंश का संस्थापक महापद्मनंद एक शूद्र था। इसमें महापद्मनंद को 'सर्वक्षत्रांतक' (क्षत्रियों का नाश करने वाला) तथा 'भार्गव' (दूसरे परशुराम का अवतार) कहा गया है।

घनानंद

यह सिकंदर का समकालीन था। इसके समय में 326 ई0पू0 में सिकंदर ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया था। ग्रीक (यूनानी) लेखकों ने इसे 'अग्रमीज' कहा है।

घनानंद ने जनता पर बहुत से कर आरोपित किये थे, जिससे जनता असंतुष्ट थी।

322 ई.पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरू चाणक्य की सहायता से घनानंद की हत्या कर मौर्य वंश की नींव रखी। मौर्यों के शासन में मगध साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया।

मगध के उत्कर्ष के लिए उत्तरदायी कारक

- सुविधाजनक भौगोलिक स्थिति जिससे निम्न गंगा के मैदानों पर नियंत्रण संभव हो सका।
- तांबे और लोहे की खानों से निकटता जो बेहतर उपकरण और हथियारों के लिए आवश्यक थे।
- मगध की दोनों राजधानियां-राजगृह और पाटलिपुत्र सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। राजगृह पहाड़ियों से घिरी थी और शत्रुओं से पूरी तरह सुरक्षित थी। पाटलिपुत्र गंगा, सोन और गंडक नदी के संगम पर स्थित थी, अतः वह जलदुर्ग से सुरक्षित थी।
- दक्षिण बिहार में गया के घने जंगलों से इमारती लकड़ी और सेना के लिए हाथी प्राप्त होते थे। यही कारण था कि मगध ने पहली बार युद्ध में हाथियों का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया।

प्राचीन भारत पर विदेशी आक्रमण

भारत के इतिहास में एक समय जब मध्य भारत के राज्य, मगध साम्राज्य की विस्तारवादी नीति का शिकार हो रहे थे, पश्चिमोत्तर प्रान्तों में अराजकता एवं अव्यवस्था का वातावरण व्याप्त था। उस समय ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जो परस्पर संघर्षरत राज्यों को जीतकर एकछत्र शासन कर सके। यह सम्पूर्ण प्रदेश उस समय विभाजित था, ऐसी स्थिति में विदेशी आक्रांताओं का ध्यान भारत के इस भू-भाग की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। परिणामस्वरूप यह प्रदेश दो विदेशी शक्तियों के आक्रमणों का शिकार हुआ-

1. ईरानी या हखामनी आक्रमण
2. यूनानी आक्रमण

यूनानी आक्रमण

सिकंदर

फिलिप द्वितीय (359 ई.पू. में) मकदूनिया का शासक बना। इसकी हत्या 329 ई.पू. में कर दी गई। सिकंदर इसका पुत्र था। यूनानी शासक (मकदूनियाई शासक) सिकंदर का भारत का आक्रमण लगभग 326 ई0पू0 में हुआ।

भारत विजय अभियान के तहत वह 326 ई.पू. में बल्ख क्षेत्र (बैक्ट्रिया, वर्तमान अफगानिस्तान का क्षेत्र) को जीतने के बाद काबुल होता हुआ हिंदुकुश पर्वत (खैबर दर्रा) पार कर भारत आया। तक्षशिला के शासक आम्भी ने आत्मसमर्पण के साथ उसका स्वागत करते हुए उसे सहयोग करने का वादा किया।

सिकंदर के आक्रमण के समय अश्मक एक सीमांत गणराज्य था जिसकी राजधानी मस्सग थी। यूनानी लेखकों के अनुसार, सिकंदर के विरुद्ध हुए युद्ध में बड़ी संख्या में पुरूष सैनिकों के मारे जाने के बाद वहां की स्त्रियाँ ने शस्त्र धारण किया था। इसी विवरण से पता चलता है कि सिकंदर ने इस नगर की समस्त स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया था।

सिकंदर को पंजाब (झेलम तथा चिनाब का मध्यवर्ती क्षेत्र) के शासक पोरस के साथ युद्ध करना पड़ा, जिसे 'हाइडेस्पीज या झेलम (वितस्ता) के युद्ध' के नाम से जाना जाता है। इस युद्ध में पोरस की पराजय हुई।

19 महीने तक भारत में रहने के बाद सिकंदर की सेना ने व्यास नदी के पश्चिमी तट पर पहुंचकर उसको पार करने से मना कर दिया।

सिकंदर विजित प्रदेशों को अपने सेनापति फिलिप को सौंपकर स्थलमार्ग द्वारा 325 ई0पू0 में

भारत से लौट गया।

सिकंदर ने दो नगरों की स्थापना की-

1. निकैया - विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में।

2. बऊकेफला - अपने प्रिय घोड़े के नाम पर।

बेबीलोन में जब सिकंदर की मृत्यु 323 ई.पू. में हुई तो उसकी उम्र मात्र 33 वर्ष थी ।

नियार्कस, ऑनेसिक्रिटस तथा अरिस्टोब्यूलस सिकंदर के साथ आने वाले लेखक थे।

भारत में सिकंदर की सफलता का कारण

- भारत में किसी एक केन्द्रीय सत्ता का अभाव सिकंदर की सफलता के प्रमुख कारणों में से एक था। उस समय 28 स्वतंत्र शक्तियों का उल्लेख मिलता है, अर्थात् राज्य किसी एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन नहीं थे।
- सिकंदर की सेना शक्तिशाली थी। उसकी सेना में तेज-तर्रार घोड़ों की बहुलता थी।
- साथ ही आम्भी जैसे देशद्रोहियों का सहयोग भी उसकी सफलता का एक बड़ा कारण था।

हखामनी या ईरानी आक्रमण

साइरस द्वितीय (558 ई.पू. से 529 ई.पू.) ने भारत पर आक्रमण का असफल प्रयास किया था। भारत में सर्वप्रथम इसी को विदेशी आक्रमण माना जाता है ।

हखामनी ईरानी साम्राज्य के प्रमुख शासक

साइरस द्वितीय (558 ई.पू. से 529 ई.पू.)

साइरस द्वितीय ने छठी शताब्दी ई.पू.के मध्य ईरान में हखामनी साम्राज्य की स्थापना की।

साइरस ने सिंध के पश्चिम में भारत के सीमावर्ती क्षेत्र की विजय की। प्लिनी के विवरण से ज्ञात होता है कि साइरस ने कपिशा नगर को ध्वस्त किया।

डेरियस प्रथम(दारा प्रथम) (522 **ई.पू. से** 486 **ई.पू.**)

भारत पर आक्रमण करने में प्रथम सफलता दारा प्रथम (डेरियस प्रथम) को प्राप्त हुई।

दारा प्रथम ने 516 ई.पू. में सर्वप्रथम गांधार को जीतकर फारसी साम्राज्य में मिलाया था।

भारत का पश्चिमोत्तर भाग दारा के साम्राज्य का 20 वां प्रांत (हेरोडोटस के अनुसार) था। कंबोज एवं गांधार पर भी उसका अधिकार था।

दारा प्रथम के तीन अभिलेखों-बेहिस्तून, पर्सिपोलिस एवं नक्शेरूस्तम से यह पता चलता है कि उसी ने सर्वप्रथम सिन्धु नदी के तटवर्ती भारतीय भू-भागों को अधिकृत किया।

पारसीकों का अंतिम सम्राट दारा तृतीय (360 ई.पू.से 330 ई.पू.) था। दारा तृतीय को यूनानी सिकंदर ने अरबेला/गौगामेला के युद्ध (331 ई.पू.) में बुरी तरह परास्त किया। इस प्रकार पारसीकों का विनाश हुआ।

भारतीय क्षेत्रों में ईरानी आक्रमण के कारण

- ईरानी सम्राटों की पश्चिम में सुदृढ़ता।
- भारत के पश्चिमोत्तर राज्यों की अस्थिर और अराजक राजनीतिक परिस्थितियां।
- पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तों का सामरिक और आर्थिक महत्व।
- उत्तरापथ मार्ग पर नियंत्रण करने की इच्छा शक्ति।

हखामनी (ईरानी) आक्रमण का भारत पर प्रभाव

ईरानी आक्रमण का भारत पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ा-

- समुद्री मार्ग की खोज से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला।
- पश्चिमोत्तर भारत में दायीं से बायीं ओर लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ। (अशोक के कुछ अभिलेख खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण हैं।)
- ईरानियों की अरमाइक लिपि का प्रचार-प्रसार हुआ। अभिलेख उत्कीर्ण करने की प्रथा प्रारंभ हुई।
- मौर्य वास्तुकला पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, जैसे - अशोक कालीन स्मारक विशेषकर घंटे के आकार के गुंबद, कुछ हद तक ईरानी प्रतिरूपों पर आधारित थे।

मौर्य वंश का इतिहास

322 ई.पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरू चाणक्य की सहायता से अन्तिम नंद शासक घनानन्द को युद्ध भूमि मे पराजित कर मौर्य वंश की नींव डाली थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य

भारत के महानतम सम्राट थे। इन्होंने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। चन्द्रगुप्त पूरे भारत को एक साम्राज्य के अधीन लाने में सफल रहे। चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर भारत के यूनानी शासक सेल्यूकस निकेटर को पराजित कर एरिया (हेरात), अराकोसिया (कंधार), जेड्रोसिया (मकरान), पेरोपेनिसडाई (काबुल) के भू-भाग को अधिकृत कर विशाल भारतीय साम्राज्य की स्थापना की। सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलना (कार्नेलिया) का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया। उसने मेगस्थनीज को राजदूत के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में नियुक्त किया.

चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिम भारत में सौराष्ट्र तक प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत शामिल किया। गिरनार अभिलेख (150 ई.पू.) के अनुसार इस प्रदेश में पुण्यगुप्त वैश्य चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल था। इसने **सुदर्शन झील** का निर्माण किया। दक्षिण में चन्द्रगुप्त मौर्य ने उत्तरी कर्नाटक तक विजय प्राप्त की। चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपना राजसिंहासन त्यागकर कर जैन धर्म अपना लिया था। ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने अपने गुरु जैनमुनि **भद्रबाहु** के साथ कर्नाटक के श्रवणबेलगोला में संन्यासी के रूप में रहने लगे थे । इसके बाद के शिलालेखों में भी ऐसा पाया जाता है कि चन्द्रगुप्त ने उसी स्थान पर एक सच्चे निष्ठावान जैन की तरह आमरण उपवास करके दम तोड़ा था। वहां पास में ही **चन्द्रगिरि** नाम की पहाड़ी है जिसका नामकरण शायद चन्द्रगुप्त के नाम पर ही किया गया था।

बिन्दुसार (298 ई.पू. से 273 ई.पू.)

यह चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र व उत्तराधिकारी था । बिन्दुसार के दरबार में सीरिया के राजा एंतियोकस ने डायमाइकस नामक राजदूत भेजा था। मिस्र के राजा टॉलेमी के काल में डाइनोसियस नामक राजदूत मौर्य दरबार में बिन्दुसार की राज्यसभा में आया था।बिंदुसार को अमित्रघात कहा गया है।

अशोक (273 ई.पू. से 236 ई.पू.)

वह 273 ई.पू. में सिंहासन पर बैठा। अभिलेखों में उसे देवानाप्रिय, देवानांपियदस्सी एवं राजा आदि उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। मास्की तथा गर्जरा के लेखों में उसका नाम अशोक तथा पुराणों में उसे अशोक वर्धन कहा गया है

सम्राट अशोक, भारत के ही नहीं बल्कि विश्व के इतिहास के सबसे महान शासकों में से एक हैं। अपने राजकुमार के दिनों में उन्होंने **उज्जैन** तथा **तक्षशिला** के विद्रोहों को दबा दिया था। पर **कलिंग** की लड़ाई उनके जीवन में एक निर्णायक मोड़ साबित हुई और उनका मन युद्ध में हुए नरसंहार से ग्लानि से भर गया। उन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया तथा उसके प्रचार के लिए बहुत कार्य किये। सम्राट अशोक को बौद्ध धर्म मे उपगुप्त ने दीक्षित किया था। उन्होंने "देवानांप्रिय", "प्रियदर्शी", जैसी उपाधि धारण की। सम्राट अशोक के शिलालेख तथा शिलोत्कीर्ण उपदेश भारतीय उपमहाद्वीप में जगह-जगह पाए गए हैं।

- धर्मप्रचार करने के लिए विदेशों में भी अपने प्रचारक भेजे। जिन-जिन देशों में प्रचारक भेजे गए उनमें सीरिया तथा पश्चिम एशिया का एंटियोकस थियोस, मिस्र का टोलेमी फिलाडेलस, मकदूनिया का एंटीगोनस गोनातस, साईरीन का मेगास तथा एपाईरस का एलैक्जेंडर शामिल थे। अपने पुत्र महेंद्र और एक बेटी को उन्होंने राजधानी पाटलिपुत्र से श्रीलंका जलमार्ग से रवाना किया। पटना (पाटलिपुत्र) का ऐतिहासिक महेन्द्रू घाट उसी के नाम पर नामकृत है।
- अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धर्म को अपना लिया था। बौद्ध धर्म को अपनाने के बाद उसने इसको जीवन में उतारने की भी कोशिश की। उसने शिकार करना और पशुओं की हत्या छोड़ दिया तथा मनुष्यों तथा जानवरों के लिए चिकित्सालयों की स्थापना कराई। उसने ब्राह्मणों तथा विभिन्न धार्मिक पंथों के सन्यासियों को उदारतापूर्वक दान दिया। इसके अलावा उसने आरामगृह, एवं धर्मशाला, कुएं तथा बावरियों का भी निर्माण कार्य कराया।
- उसने **धर्ममहामात्र** नाम के पदवाले अधिकारियों की नियुक्ति की जिनका काम आम जनता में धम्म का प्रचार करना था।

अशोक के शिलालेख

- अशोक के लगभग 40 अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये ब्राह्मी, खरोष्ठी और आर्मेइक-ग्रीक लिपियों में लिखे गये हैं। सम्राट अशोक के ब्राह्मी लिपि में लिखित सन्देश को सर्वप्रथम एलेग्जेंडर कनिंघम के सहकर्मी जेम्स प्रिंसेप ने पढ़ा था। अशोक के अभिलेखों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-
    1. शिलालेख
    2. स्तम्भलेख
    3. गुहालेख
- शिलालेखों और स्तम्भ लेखों को दो उपश्रेणियों में रखा जाता है। 14 शिलालेख

सिलसिलेवार हैं, जिनको चतुर्दश शिलालेख कहा जाता है।

14 दीर्घ शिलालेख

अशोक के 14 दीर्घ शिलालेख (या बृहद शिलालेख) विभिन्न लेखों का समूह है जो आठ भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त किए गये हैं-

(१) धौली- यह उड़ीसा के पुरी जिला में है।

(२) शाहबाज गढ़ी- यह पाकिस्तान (पेशावर) में है।

(३) मान सेहरा- यह पाकिस्तान के हजारा जिले में स्थित है।

(४) कालसी- यह वर्तमान उत्तराखण्ड (देहरादून) में है।

(५) जौगढ़- यह उड़ीसा के जौगढ़ में स्थित है।

(६) सोपारा- यह महाराष्ट्र के पालघर जिले में है।

(७) एरागुडि- यह आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल जिले में स्थित है।

(८) गिरनार- यह काठियावाड़ में जूनागढ़ के पास है।

14 दीर्घ शिलालेकों के वर्ण्य-विषय

- प्रथम शिलालेख : किसी भी पशु वध न किया जाए तथा राजकीय एवँ "मनोरंजन तथा उत्सव" न किये जाने का आदेश दिया गया है ।
- द्वितीय शिलालेख : मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय खुलवाना और उनमें औषधि की व्यवस्था करना। मनुष्यों एवँ पशुओं के के कल्याण के लिए मार्गों पर छायादार वृक्ष लगवाने तथा पानी की व्यवस्था के लिए कुँए खुदवाए।
- तृतीय शिलालेख : राजकीय पदाधिकारियों को आदेश दिए गए हैं कि प्रति पाँच वर्षों के बाद धर्म प्रचार के लिए दौरे पर जायें।
- चतुर्थ शिलालेख : राजकीय पदाधिकारियों को आदेश दिए गए हैं कि व्यवहार के सनातन नियमों यथा - नैतिकता एवं दया - का सर्वत्र प्रचार प्रसार किया जाए।
- पञ्चम शिलालेख : इसमें धर्ममहामात्रों की नियुक्ति तथा धर्म और नैतिकता के प्रचार प्रसार के आदेश का वर्णन है।
- षष्ट शिलालेख : राजकीय पदाधिकारियों को स्पष्ट आदेश देता है कि सर्वलोकहित से सम्बंधित कुछ भी प्रशासनिक सुझाव मुझे किसी भी समय या स्थान पर दें।
- सप्तम शिलालेख : सभी जाति, सम्प्रदाय के व्यक्ति सब स्थानों पर रह सकें क्योंकि वे सभी आत्म-संयम एवं ह्रदय की पवित्रता चाहते हैं।
- अष्टम शिलालेख : राज्यभिषेक के दसवें वर्ष अशोक ने सम्बोधि (बोधगया) की यात्रा कर धर्म यात्राओं का प्रारम्भ किया। ब्राम्हणों एवं श्रमण के प्रति उचित वर्ताव करने का उपदेश दिया गया है।

- नवम शिलालेख : दास तथा सेवकों के प्रति शिष्टाचार का अनुपालन करें, जानवरों के प्रति उदारता, ब्राह्मण एवं श्रमण के प्रति उचित वर्ताव करने का आदेश दिया गया है।
- दशम शिलालेख : घोषणा की जाए की यश और कीर्ति के लिए नैतिकता होनी चाहिए।
- चतुर्दश शिलालेख : धर्म प्रचानार्थ अशोक अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न स्थानों पर शिलाओं के उपर धम्म लिपिबद्ध कराया जिसमें धर्म प्रशासन संबंधी महत्वपूर्ण सूचनाओं का विवरण है ।

लघु शिलालेख

अशोक के लघु शिलालेख, चौदह दीर्घ शिलालेखों के मुख्य वर्ग में सम्मिलित नहीं है जिसे लघु शिलालेख कहा जाता है। ये निम्नांकित स्थानों से प्राप्त हुए हैं-

(१) रूपनाथ - ईसा पूर्व २३२ का यह मध्य प्रदेश के कटनी जिले में है।

(२) गुजरी- यह मध्य प्रदेश के दतिया जिले में है। इसमें अशोक का नाम अशोक लिखा गया है

(३) भाबरू- यह राजस्थान के जयपुर जिले के विराटनगर में है। किसने अशोक ने बौद्ध धर्म का वर्णन किया है

(४) मास्की- यह रायचूर जिले में स्थित है। इसमें भी अशोक ने अपना नाम अशोक लिखा है

(५) सहसराम- यह बिहार के शाहाबाद जिले में है।

रुम्मिनदेई अभिलेख के अनुसार अशोक ने यहां कर आठवां भाग कर दिया।

अशोक की आंतरिक नीति और बौद्ध धर्म:

धम्म शब्द संस्कृत भाषा के धर्म का प्राकृत रूपान्तरण है। अशोक के धम्म की परिभाषा राहुलोवादसुत्त से ली गयी। स्वनियंत्रण अशोक की धम्म की नीति का मुख्य सिद्धांत है।

भब्रू लघु शिलालेख में अशोक के धम्म का उल्लेख मिलता है। जिसमें वह त्रिसंघ - बुद्ध, संघ व धम्म में विशवास करता है। उसने अपने 12वें शिलालेख में सारवृद्धि पर ज़ोर दिया है। सांची और सारनाथ लघुस्तंभ लेख में संघ में फूट डालने के विरुद्ध जारी आदेश में कौशांबी और पाटलीपुत्र के महापात्रों को दिये गए है।

* विहार यात्रा के रूप में प्रचलित यात्रा को अशोक ने अपने 8वें शिलालेख में धर्म यात्रा के रूप में परिवर्तित कर दिया। अपने तीसरे शिलालेख ने धम्म के प्रचार के रूप में नियुक्त रज्जुकों, प्रादेशिकों, एवं युक्तों को यह आज्ञा दी गयी हैं कि वे प्रत्येक 5वें वर्ष राज्यों का भ्रमण करें एवं जनता को धर्मोपदेश दें। अभिलेखों में इसे अनुसंधान कहा गया है।

* धम्म की स्थापना, विकास और देख रेख के लिए धम्म महापात्रों की नियुक्ति की गयी।

* धर्म प्रचारकों को दक्षिण भारत के साथ मिस्र, सीरिया, ग्रीस, बर्मा, श्रीलंका आदि देशों में

भेजा। ईसा पूर्व पहली व दूसरी सदियों के ब्राह्मी अभिलेख श्रीलंका में मिले है।

इतिहास में अशोक का स्थान

अशोक एक महान धर्म प्रचारक था। उसने देश में एक राजनितिक एकता स्थापित की। उसने एक धर्म, एक भाषा और प्राय एक लिपि के सूत्र में सारे देश को बांध दिया।

- देश के एकीकरण में ब्राह्मी, खरोस्ठी, आरामाइक और यूनानी सभी लिपियों का सम्मान किया।
- उसने यूनानी, प्राकृत और संस्कृत जैसी भाषाओं को और विविध धार्मिक संप्रदायों को समन्वित किया।
- उसने प्रजा पर बौद्ध धर्म लादा नही बल्कि उसने सभी धर्मों को दान दिये।
- धार्मिक प्रचार के लिए सुदूर भागों में अपने अधिकारियों को नियुक्त किया जिससे प्रशासन कार्यों में लाभ हुआ और साथ ही विकसित गंगा के मैदानों व पिछड़े दूरवर्ती प्रदेशों में संपर्क बढ़ा।
- इतिहास में अशोक का नाम उसकी शांति, अनाक्रमण और सांस्कृतिक विजय की नीति के लिए अमर हैं।
- उसके पास पर्याप्त साधन सम्पदा थी और विशाल सेना थी फिर भी उसने कलिंग विजय के बाद कोई युद्ध नहीं किया। पर अशोक की नीति उसके पड़ोसियों की मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं ला सकी।

सप्त स्तम्भ-लेख:

1. दिल्ली टोपरा- यह सर्वाधिक प्रसिद्ध स्तम्भ लेख है । मध्यकालीन इतिहासकार शम्स-ए-सिराज के अनुसार मूलतः यह उत्तर प्रदेश के सहारनपुर (खिज्राबाद) जिले में टोपरा नामक स्थान पर गड़ा हुआ था। कालान्तर में फिरोज शाह तुगलक (1351-88 ई.) द्वारा दिल्ली लाया गया था।

2. दिल्ली मेरठ- यह भी पहले मेरठ में था तथा बाद में फिरोज तुगलक द्वारा दिल्ली में लाया गया।

3. लौरिया अरराज- बिहार के चम्पारन जिले में स्थित

* अशोक के रामपुरवा स्तंभ पर बैल की आकृति है।

मौर्य काल का शासन प्रबंध

प्रशासन लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर आधारित था। यहाँ प्रशासनिक व्यवस्था केंद्रीकृत थी परन्तु इसे निरंकुश नहीं कहा जा सकता । कौटिल्य ने राज्य की सप्तांग

विचारधारा को प्रतिपादित किया। राज्य के सात अंग हैं- राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दंड और मित्र। इन सप्तांगों में कौटिल्य राजा को सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है तथा शेष को अपने अस्तित्व के लिए राजा पर ही निर्भर बताता है।

अर्थशास्त्र में वर्णित प्रमुख तीर्थ एवं अध्यक्ष

- 'अर्थशास्त्र' के अनुसार **'तीर्थ'** मौर्य काल में **उच्चाधिकारी** होता था ।
- अर्थशास्त्र में कुल 18 तीर्थों की चर्चा मिलती है, जिनके लिये अधिकतर स्थानों पर **'महामात्र'** शब्द मिलता है। इसके अतिरिक्त 26 अध्यक्षों की चर्चा भी मिलता है।

तीर्थ	संबंधित विभाग
2. पुरोहित	प्रमुख धर्माधिकारी तथा प्रधानमंत्री
3. प्रशास्ता	राजकीय आज्ञाओं को लिखने वाला प्रमुख अधिकारी
4. सेनापति	युद्ध विभाग का मंत्री
5. युवराज	राजा का उत्तराधिकारी
6. समाहर्ता	राजस्व विभाग का प्रधानमंत्री
7. सन्निधाता	राजकीय कोषाध्यक्ष
8. प्रदेष्टा	फौजदारी न्यायालय का न्यायाधीश (कमिश्नर)
9. नायक	सेना का संचालक अथवा नगर रक्षक
10. कर्मांतिक	उद्योगों एवं कारखानों का प्रधान निरीक्षक
11. दंडपाल	सेना की सामग्री जुटाने वाला प्रमुख अधिकारी
12. व्यावहारिक	दीवानी न्यायालय का प्रमुख न्यायाधीश
13. नागरक	नगर का प्रमुख अधिकारी या नगर कोतवाल
14. दुर्गपाल	राजकीय दुर्ग रक्षकों का अध्यक्ष
15. अंतपाल	सीमावर्ती दुर्गों का रक्षक
16. दौवारिक	राजमहलों की देख-रेख करने वाला प्रधान
17. आंतर्वेशिक	सम्राट की अंगरक्षक सेना का प्रधान अधिकारी
17. मंत्रिपरिषदाध्यक्ष	मंत्री परिषद का अध्यक्ष
18. आटविक	वन विभाग का प्रधान अधिकारी

मौर्य प्रशासन के प्रमुख अध्यक्ष

अध्यक्ष	संबंधित विभाग
पण्याध्यक्ष	वाणिज्य का अध्यक्ष
पौतवाध्यक्ष	माप-तौल का अध्यक्ष
सूनाध्यक्ष	बूचड़खाने का अध्यक्ष
सुराध्यक्ष	शराब व मदिरा का अध्यक्ष
कुप्याध्यक्ष	वन तथा उसकी संपदा का अध्यक्ष
सूत्राध्यक्ष	कताई-बुनाई विभाग का अध्यक्ष
लोहाध्यक्ष	धातु विभाग का अध्यक्ष
लक्षणाध्यक्ष	टकसाल का अध्यक्ष
मुद्राध्यक्ष	पासपोर्ट विभाग का अध्यक्ष
नवाध्यक्ष	जहाजरानी विभाग का अध्यक्ष
विवीताध्यक्ष	चारागाह का अध्यक्ष
अक्षपटालाध्यक्ष	महालेखाकार
पत्तनाध्यक्ष	बंदरगाहों का अध्यक्ष
शुल्काध्यक्ष	चुंगी एवं शुल्क विभाग का अध्यक्ष
देवताध्यक्ष	धार्मिक संस्थान का अध्यक्ष

मौर्यकालीन प्रांत

- चंद्रगुप्त मौर्य ने शासन की सुविधा हेतु अपने **विशाल साम्राज्य को चार प्रांतों में** विभाजित किया। **उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला, दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि, अवंति की राजधानी उज्जयिनी** तथा **प्राची (मध्य प्रदेश) की राजधानी पाटलिपुत्र** थी। प्रांतों का शासन "राजवंशीय कुमार' या 'आर्यपुत्र' नामक पदाधिकारियों द्वारा होता था।
- मौर्य काल में प्रान्तों को '**चक्र**' कहा जाता था, जो मंडलों में विभाजित थे। इन प्रान्तों का शासन सीधे सम्राट द्वारा नियंत्रित न होकर उसके प्रतिनिधि द्वारा संचालित होता था।

मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था:

कृषि

- राजकीय भूमि की व्यवस्था करने वाला प्रधान अधिकारी **सीताध्यक्ष** कहलाता था। भूमि पर दासों, कर्मचारियों और कैदियों द्वारा जुताई-बुआई होती थी।
- कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में **कृष्ट (जुती हुई), आकृष्ट (बिना जुती हुई), स्थल (ऊँची भूमि)** आदि अनेक भूमि का उल्लेख किया है।
- राज्य में आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर था। यह मुख्यतः उपज का 1/6 भाग होता था।

कर से संबंधित प्रमुख शब्दावलियां और उनसे संबंधित विषय-वस्तु	
सीता	राजकीय भूमि से होने वाली आय
भाग	उपज का हिस्सा
प्रवेश्य	आयात कर
निष्क्राम्य	निर्यात कर
प्रणय	आपातकालीन कर
बलि	एक प्रकार का राजस्व कर
हिरण्य	अनाज के रूप में न लेकर नकद लिया जाता था
सेतुबंध	राज्य की ओर से सिंचाई का प्रबंध
विष्टि	निःशुल्क श्रम एवं बेगार

उद्योग:

- सूत कातना एवं बुनना मौर्य काल का **प्रधान उद्योग** था।
- **उद्योग धंधों की संस्थाओं को 'श्रेणी' कहा जाता था। श्रेणी न्यायालय के प्रधान को 'महाश्रेष्ठि' कहा जाता था।**
- व्यापारिक जहाजों का निर्माण इस काल के प्रमुख उद्योगों में से एक था।

मौर्यकालीन मुद्राएं:

- **मौर्यों की राजकीय मुद्रा 'पण' थी।**
- सुवर्ण एवं निष्क यह सोने का बना होता था।
- **कार्षापण, पण, धारण चांदी का** बना होता था। पण 3/4 तोले के बराबर चांदी का

सिक्का था।

- **माषक** एवं **काकणि यह तांबे** का सिक्का होता था।
- मुद्राओं का परीक्षण करने वाले अधिकारी को '**रूपदर्शक**' कहा जाता था।
- राज्य के शीर्षस्थ अधिकारियों को 48000 पण तथा सबसे निम्न अधिकारियों को 60 पण वेतन मिलता था।
- मयूर, पर्वत और अर्द्धचंद्र की छाप वाली आहत रजत मुद्राएं मौर्य साम्राज्य की मान्य मुद्राएं थीं।

वाणिज्य एवं व्यापार

- मौर्य काल में व्यापार (आंतरिक एवं बाह्य), जल एवं स्थल दोनों मार्गों से होता था।
- आंतरिक व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे- **तक्षशिला, काशी, उज्जैन, कौशांबी तथा तोसली** (कलिंग राज्य की राजधानी) आदि।
- इस समय भारत का बाह्य व्यापार **रोम, सीरिया, फारस, मिस्र तथा अन्य पश्चिमी देशों** के साथ होता था। यह व्यापार पश्चिमी भारत में **भृगुकच्छ** बंदरगाह से तथा पूर्वी भारत में **ताम्रलिप्ति** के बंदरगाह द्वारा किया जाता था।
- मेगस्थनीज ने **ऐग्रोनोमोई** नामक अधिकारी की चर्चा की है, जो **मार्ग निर्माण का विशेष अधिकारी** था।
- भारत से मिस्र को हाथी दांत, कछुए, सीपियां, मोती, रंग, नील और लकड़ी निर्यात होता था।

व्यापारिक मार्ग:

- मुख्य रूप से चार व्यापारिक मार्गों का उल्लेख मिलता है-
    - **प्रथम मार्ग(उत्तरपथ)**-उत्तर-पश्चिम **पुरूषपुर** से **पाटलिपुत्र** (ताम्रलिप्ति) तक जाने वाला राजमार्ग (सबसे महत्वपूर्ण मार्ग)
    - **द्वितीय मार्ग**-पश्चिम में **पाटल** से पूर्व में **कौशांबी** के समीप उत्तरापथ मार्ग से मिलता था।
    - **तृतीय मार्ग**-दक्षिण में **प्रतिष्ठान** से उत्तर में **श्रावस्ती** तक जाने वाला मार्ग।
    - **चतुर्थ मार्ग-** यह मार्ग **भृगुकच्छ** से **मथुरा** तक जाता था, जिसके मार्ग में उज्जयिनी पड़ता था।

मौर्यकालीन कला:

- मौर्ययुगीन कला को दो भागों में विभाजित किया जाता है -
    - **राजकीय कला-** राजकीय कला में राजरक्षकों द्वारा निर्मित स्मारकों को शामिल किया गया, **जैसे- स्तंभ, गुहा, स्तूप** आदि। राजकीय कला में राजरक्षकों द्वारा निर्मित स्मारकों को शामिल किया गया, जैसे- स्तंभ, गुहा, स्तूप आदि।
    - **लोककला-** लोककला के अन्तर्गत स्वतंत्र कलाकारों द्वारा निर्मित वस्तुएं, **जैसे- यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमाएं**, **मिट्टी की मूर्ति** आदि शामिल किए गए।
- मौर्य काल के सर्वोत्कृष्ट नमूने अशोक के **एकाश्म स्तंभ** हैं जोकि उसने धम्म प्रचार के लिए देश के विभिन्न भागों में स्थापित किये थे। अशोक ने चट्टानों को काटकर कंदराओं का निर्माण करवाकर वास्तुकला में एक नई शैली आरंभ किया।
- गुहा वास्तु इस काल की अन्य देन है। अशोक के शासनकाल से ही **गुहाओं का उपयोग आवास के रूप में** होने लगा था।

मौर्यकालीन स्थापत्य की प्रमुख विशेषताएं:

- निर्माण कार्य में पत्थरों का इस्तेमाल
- लौह अयस्कों का सधा हुआ प्रयोग
- चमकदार पॉलिश (ओप) का प्रयोग
- भवन निर्माण में लकड़ी का विशेष प्रयोग

मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण:

मौर्य साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण थे-

- मौर्य साम्राज्य केन्द्रीकृत प्रशासन पर टिका था, जिसका सबसे मजबूत आधार था- सुयोग्य एवं दूरदर्शी सम्राट। 232 ई0पू0 में अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य कमजोर होने लगा और अंततः लगभग 185 ई0पू0 में अंतिम मौर्य सम्राट **बृहद्रथ** की हत्या हो गई।
- आर्थिक संकटग्रस्त व्यवस्था का होना भी पतन के कारणों में महत्वपूर्ण माना जाता है।
- अयोग्य, निर्बल तथा अदूरदर्शी उत्तराधिकारी
- राष्ट्रीय चेतना का अभाव
- आर्थिक एवं सांस्कृतिक असमानताएं
- प्रान्तीय शासकों के अत्याचार

- करों की अधिकता

मौर्योत्तर काल

मौर्य साम्राज्य का अंत होने से भारत की राजनीतिक एकता छिन्न-भिन्न लगी थी । भारत की उत्तरी-पश्चिमी मार्गों से अनेक विदेशी आक्रमणकारी अनेक स्थानों पर अलग-अलग राज्य स्थापित करने लगे। दक्षिण भारत के भी कई सामंतों ने अपनी स्वतंत्र स्थिति की घोषणा कर दी । मध्य प्रदेश का संबंध गोदावरी तथा सिंधु घाटी क्षेत्र से टूट गया । **इस काल को मौर्योत्तर काल कहा जाता है ।**

हिन्द-यवन (इंडो-ग्रीक) आक्रमण:

चंद्रगुप्त मौर्य ने **सेल्युकस** को परास्त कर भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों तथा अफगानिस्तान पर अपना अधिकार कर लिया था। लगभग एक शता। (305-206 ईसा पूर्व) तक सेल्युकस वंशी राजाओं का भारतीय नरेशों के साथ मैत्री संबंध बना रहा। परंतु परवर्ती मौर्य नरेशों के निर्बल शासन काल में स्थिति बदल गयी तथा मौर्य साम्राज्य के पतनोपरांत भारत पर पश्चिमोत्तर से पुनः विदेशियों के आक्रमण प्रारंभ हो गये।

इसमें सर्वप्रथम आने वाले बल्ख (बैक्ट्रिया) के यवन शासक थे। उन्होंने भारत के कुछ प्रदेशों को जीत लिया। इन्हीं भारतीय-यवन राजाओं को हिन्द-यवन (इंडो-ग्रीक) अथवा बख्ती-यवन (बैक्ट्रियन-ग्रीक) कहा जाता है।

डेमेट्रियस प्रथम (ई.पू. 220--175)

ई.पू. 183 के लगभग उसने पंजाब का एक बड़ा भाग जीत लिया और साकल को अपनी राजधानी बनाया। डेमेट्रियस ने भारतीयों के राजा की उपाधि धारण की और यूनानी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियों वाले सिक्के चलाए।

किन्तु जब डेमेट्रियस भारत में व्यस्त था, स्वयं बैक्ट्रिया में एक युक्रेटीदस की अध्यक्षता में विद्रोह हो गया और डेमेट्रियस को बैक्ट्रिया से हाथ धोना पड़ा। युक्रेटीदस भी भारत की ओर बढ़ा और कुछ भागों को जीतकर उसने तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया।

युक्रेटीदस के सिक्के बैक्ट्रिया, सीस्तान, काबुल की घाटी, कपिश और गंधार में मिले हैं। सम्भवतः झेलम तक पश्चिमी पंजाब को उसने अपने राज्य में मिला लिया। यद्यपि वह और आगे न बढ़ सका। डेमेट्रियस का अधिकार पूर्वी पंजाब और सिंध पर ही रह गया।

भारत में यवन साम्राज्य इस प्रकार दो कुलों में बंट गया -

1. डेमेट्रियस
2. युक्रेटीदस के वंश।

सबसे प्रसिद्ध यवन शासक मीनान्डर था (ई.पू. 160-120), जो बौद्ध साहित्य में 'मिलिन्द' के नाम से प्रसिद्ध है। यह सम्भवतः डेमेट्रियस के कुल का था। पेरिप्लस में लिखा है कि मीनान्डर के सिक्के भड़ोच के बाज़ारों में खूब चलते थे। स्वात की घाटी में एक मंजूषा मिली है जिस पर मीनान्डर का नाम ख़ुदा है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि मीनान्डर के राज्य में अफ़ग़ानिस्तान का कुछ भाग और उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश सम्मिलित थे।

शक:

भारत में शकों तथा पह्लवों ने लम्बी अवधि तक शासन किया। उन्होंने समय-समय पर भारतीय राज्यों को परेशान किया तथा भारतीय राजनीति और संस्कृति को एक नई दिशा प्रदान की। इन्होंने भारत में उस समय राज्य स्थापित किया, जब मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो गई थी।

- शक मूलतः सीरिया के उत्तर में निवास करने वाले थे। शक बोलन दर्रे से भारत में आए।
- पश्चिमी क्षत्रपों में क्षहरात वंश (नासिक) का नहपान तथा कादर्मक वंश (उज्जैन) का रूद्रदामन सबसे प्रसिद्ध शासक थे।

मोगा/माउस

- तक्षशिला के शासकों में मोगा/माउस प्रमुख था। उसे प्रथम शक शासक माना जाता है।
- उसके अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं।

नहपान

- महाराष्ट्र के पश्चिमी क्षेत्र के शक शासकों में क्षहरात वंश का नहपान सबसे प्रसिद्ध था।
- सातवाहन शासक गौतमीपुत्र शातकर्णी से वह पराजित हुआ था।
- नहपान के सिक्कों पर उसके लिए 'राजा' संबोधन हुआ है। उसके सिक्के अजमेर से नासिक तक मिलते हैं।

रूद्रदामन प्रथम

- (130-150 ई0) हुआ। भारत में शकों का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा रूद्रदामन प्रथम उसके राज्याधिकार में सिंध, कोंकण, नर्मदा घाटी, मालवा, काठियावाड़ और गुजरात का एक बड़ा भाग था।
- रूद्रदामन ने सुदर्शन झील (गुजरात) का जीर्णाद्धार किया। इस झील का निर्माण मौर्य काल में हुआ था। उसके समय सौराष्ट्र प्रांत का शासक सुविशाख था।
- रूद्रदामन संस्कृत का बड़ा प्रेमी था। उसने ही सबसे पहले विशुद्ध संस्कृत भाषा में जूनागढ़ अभिलेख जारी किया।

शक वंश का अंतिम शासक रूद्रसिंह तृतीय था। गुप्त शासक चंद्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादिय' ने उसे पराजित कर पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य को अपने साम्राज्य मे मिला लिया।

पह्लव वंश या पार्थियन साम्राज्य:

- पार्थियन लोगों का मूल निवास स्थान ईरान था।
- पश्चिमोत्तर भारत में शकों के आधिपत्य के बाद पार्थियन लोगों का आधिपत्य हुआ।
- भारत में पार्थियन साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक मिथ्रेडेट्स प्रथम (171-130 ई.पू.) था।
- पह्लव वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक गोण्डोफर्नीज (20-41 ई.) था।
- इस साम्राज्य का अंत कुषाणों के द्वारा हुआ।

कुषाण वंश

प्रथम शताब्दी ई. में कुषाणों ने एक ऐसे विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की, जिसमें उत्तरी भारत के अधिकांश भाग के अतिरिक्त मध्य एशिया के कुछ प्रदेश भी सम्मिलित थे। भारतीय संस्कृति के इतिहास में कुषाण काल का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

कुजुल कडफिसस:

- भारत में कुषाणवंश का पहला विख्यात शासक कुजुल कडफिसस था।
- शासनकाल के आरंभ में उसने काबुल घाटी के यूनानियों को पराजित किया तथा उसे अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया। उसके बाद पार्थियनों (पह्लव) को पराजित कर उसने गांधार तथा दक्षिणी अफगानिस्तान पर भी अधिकार कर लिया।
- इसने अपने सिक्कों को रोमन सम्राट ऑगस्टस के सिक्कों के अनुरूप जारी किया।
- कुजुल कडफिसस 45 ई। से लेकर 78 ई। तक शासन किया। उसके राज्य में काबुल, गांधार, बैक्ट्रिया, बलूचिस्तान आदि प्रदेश सम्मिलित थे।
- वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था ।

विम कडफिसस:

- कुजुल कडफिसस की 78 ई. में मृत्यु हो गई ओर इसके बाद उसका पुत्र विम कडफिसस शासक बना।
- विम कडफिसस ने पंजाब, सिंध, कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग को कुषाण राज्य के अन्तर्गत ला दिया। कुछ इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि उसने कुषाण साम्राज्य को पूर्व में बनारस तक तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक विस्तारित कर दिया।
- विम कडफिसस ने 'देवपुत्र' तथा 'सम्राटों का सम्राट' की उपाधि ली। उसके सिक्कों से यह ज्ञात होता है कि वह शैव मत का अनुयायी था और उसने 78 ई. से 110 ई. तक शासन किया।

कनिष्क:

- कनिष्क कुषाण-राजवंश का सबसे महान राजा था।
- कनिष्क कुषाण वंश का महानतम शासक था। उसने 78 ई. में अपना राज्यारोहण किया तथा इसके उपलक्ष्य में शक संवत् चलाया। इसे वर्तमान में भारत सरकार द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। यह चैत्र (22 मार्च अथवा 21 मार्च) से प्रारंभ होता है।
- रोमन सम्राट की भांति कनिष्क ने 'कैसर' या 'सीजर' की उपाधि धारण की तथा शकों की भांति क्षत्रप शासन व्यवस्था लागू की।
- कनिष्क की प्रथम राजधानी 'पेशावर' (पुरूषपुर) एवं दूसरी राजधानी 'मथुरा' थी। कनिष्क ने कश्मीर जीतकर वहां 'कनिष्कपुर' नामक नगर बसाया।
- कनिष्क ने बौद्ध धर्म का मुक्त हृदय से संपोषण एवं संरक्षण किया। उसके समय में कश्मीर के कुंडलवन में वसुमित्र की अध्यक्षता में चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ। मौर्य वंशीय सम्राट अशोक के बाद कनिष्क ही बौद्ध धर्म का प्रबल समर्थक था।
- कनिष्क ने अनेक बौद्ध विहारों, चैत्यों एवं स्तूपों का निर्माण करवाया; पुरूषपुर (पेशावर) स्तूप उसके समय का प्रसिद्ध स्तूप है।
- इसके दरबार में पार्श्व, अश्वघोष, वसुमित्र तथा नागार्जुन जैसे विद्वान और चरक जैसे चिकित्सक विद्यमान थे।
- कनिष्क कला एवं संस्कृति का महान संरक्षक था। उसके समय में मूर्तिकला की गांधार एवं मथुरा शैली का जन्म हुआ।
- कनिष्क ने चीन से रोम को जाने वाली सिल्क मार्ग पर अपना नियंत्रण स्थापित किया था।
- कनिष्क ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर वहां के प्रसिद्ध विद्वान अश्वघोष, बुद्ध का भिक्षापात्र और एक अनोखा कुक्कुट प्राप्त किया था।
- महास्थान (बोगरा) में पाई गई सोने की मुद्रा पर कनिष्क की एक खड़ी मूर्ति अंकित है।

- मथुरा में कनिष्क की एक प्रतिमा मिली है, जिसमें उन्हें घुटने तक चोगा एवं पैरों में भारी जूते पहने हुए दिखाया गया है।
- कनिष्क को 'द्वितीय अशोक' कहा जाता है।
- कनिष्क द्वारा जारी किये गये एक तांबे के सिक्के पर उसे बलिवेदी पर बलि देते दिखाया गया है।

हुविष्क:

- हुविष्क कनिष्क का उत्तराधिकारी था। उसने कश्मीर में हुविष्कपुर/हुष्कपुर नामक नगर की स्थापना करवाई, जिसका उल्लेख कल्हण की 'राजतरंगिणी' में किया गया है।
- कनिष्क कुल का अंतिम महान सम्राट वासुदेव था।

मौर्यात्तर कालीन कला एवं संस्कृति

मौर्यात्तर काल में कला का आधार मुख्यतः बौद्ध धर्म ही रहा। कनिष्क के शासनकाल में कला के क्षेत्र में दो स्वतंत्र शैलियों का विकास हुआ-

1. गांधार कला,
2. मथुरा कला

गांधार कला

- उत्तर-पश्चिम में गांधार में ई.पू. प्रथम शताब्दी के मध्य कला की एक शैली का विकास हुआ, जिसे 'गांधार शैली' कहते हैं।
- इस शैली को इण्डो-ग्रीक शैली या ग्रीक बुद्धिष्ट शैली भी कहा जाता है। इसका सर्वाधिक विकास कुषाण काल में हुआ।
- गांधार कला के अन्तर्गत मूर्तियों के शरीर की आकृति को सर्वथा यथार्थ दिखाने का प्रयत्न किया गया है।
- इस कला की विषय वस्तु बौद्ध परंपरा से ली गई है, किन्तु निर्माण का ढंग यूनानी था।
- गांधार मूर्तिकला शैली में बुद्ध की मूर्तियां यूनानी देवता अपोलो के समान बनाई गई हैं।

मथुरा कला

- मौर्यात्तर काल में विकसित हुई मथुरा शैली के मूर्तिकारों ने विभिन्न देशी परंपराओं के सम्मिश्रण से इस कला को जन्म दिया, जिसमें बुद्ध की विलक्षण प्रतिमाएं बनीं। परन्तु इस जगह की ख्याति कनिष्क की सिरविहीन खड़ी मूर्ति को लेकर है।

- जैन धर्मानुयायियों ने भी मथुरा में मथुरा मूर्तिकला की शैली को प्रश्रय दिया, जहां शिल्पियों ने महावीर की एक मूर्ति बनाई।
- इस शैली में मुख्यतः लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग किया जाता था।
- कुषाण शासकों के द्वारा भी इसका संरक्षण किया गया। अतः इस काल में इसका विकास हुआ।
- मथुरा कला के अन्तर्गत बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा, अभयमुद्रा, ध्यानमुद्रा, भू-स्पर्श मुद्रा आदि मूर्तियों का निर्माण किया गया।
- मथुरा कला का भरहुत और सांची की कलाओं के साथ निकट का संबंध है।

मौर्यात्तर कालीन साहित्य

• गाथासप्तशती	• हाल
• कामसूत्र	• वात्स्यायन
• महाभाष्य	• पतंजलि
• सौंदरानंद, बुद्धचरित	• अश्वघोष
• चरक संहिता	• चरक
• स्वप्नवासवदत्ता	• भास
• नाट्यशास्त्र	• भरत मुनि
• चारूदत्ता	• भास
• मिलिंदपन्हो	• नागसेन
• उरूभंग	• भास

मौर्योत्तरकालीन प्रशासनिक व्यवस्था

- इस काल में अधिकतर छोटे-छोटे राज्य थे। यद्यपि उत्तर में कुषाणों एवं दक्षिण में सातवाहनों ने काफी विस्तृत प्रदेशों पर राज किया किन्तु न तो सातवाहन और न ही

कुषाणों के राजनीतिक संगठन में वह केन्द्रीकरण था जो मौर्य प्रशासन की मुख्य विशेषता थी।

- चीनी शासकों के अनुरूप कुषाण राजाओं ने मृत राजाओं की मूर्तियाँ स्थापित करने के लिए मंदिर बनवाने की प्रथा (देवकुल) आरंभ की। चीनी शासकों के अनुरूप कुषाण राजाओं ने 'देवपुत्र' जैसी उपाधियां धारण कीं। मूर्तिपूजा का आरंभ कुषाण काल से ही माना जाता है।
- सातवाहन शासकों ने ब्राम्हणों एवं बौद्ध भिक्षुओं को पहली शताब्दी ई.पू. में कर-मुक्त भूमि प्रदान करने की प्रथा प्रारंभ की। नानाघाट अभिलेख में भूमिदान का प्रथम अभिलेखीय प्रमाण मिलता है।
- कुषाणों ने राज्य शासन में क्षत्रप-प्रणाली चलाई। शकां एवं पार्थियन ने दो आनुवंशिक राजाओं के संयुक्त शासन की परिपाटी चलाई।
- प्रशासन की व्यवस्था के लिए सातवाहन साम्राज्य को अनेक विभागों में बांटा गया था, जिन्हें 'अहार' कहा जाता था। प्रत्येक 'अहार' अमात्य के अधीन होता था।
- कुषाणों ने प्रांतों में द्वैध शासन की प्रणाली प्रारंभ की।
- सातवाहन काल के पदाधिकारियों में भांडागारिक (कोषाध्यक्ष), रज्जुक (राजस्व विभाग का प्रमुख), पनियघरक (जलापूर्ति अधिकारी), कर्मान्तिक (भवन निर्माण अधिकारी), सेनापति आदि होते थे।
- अहार के नीचे ग्राम होते थें प्रत्येग ग्राम का अध्यक्ष एक 'ग्रामिक' होता था, जो ग्राम प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता था।
- कुषाण लेखों से पहली बार 'दंडनायक' तथा 'महादंडनायक' जैसे पदाधिकारी का उल्लेख मिलता है।

मौर्योत्तरकालीन आर्थिक व्यवस्था:

मुद्राएं

- चार धातुओं-सोना, चांदी, तांबा एवं शीशे से 'कार्षापण' नामक सिक्का बनता था।
- हिंद-यवन शासकों ने सर्वप्रथम सोने के सिक्के चलाए। उनके सिक्कों पर द्विभाषिक लेख होते थे-एक तरफ यूनानी भाषा, यूनानी लिपि में तथा दूसरी तरफ प्राकृत भाषा, खरोष्ठी लिपि में।
- कुषाणों ने सर्वप्रथम शुद्ध स्वर्ण के सिक्के चलवाए, जो 124 ग्रेन का था।
- सातवाहनों ने सीसे के अतिरिक्त चांदी, तांबा, पोटीन (तांबा, जिंक, सीसा तथा मिश्र धातु) आदि के सिक्के भी चलाए।

वाणिज्य एवं व्यापार

- आर्थिक रूप से इस काल का उज्ज्वल पक्ष वाणिज्य-व्यापार की प्रगति था।
- इस काल में भारत का मध्य एशिया तथा पाश्चात्य विश्व के साथ घनिष्ठ व्यापार शुरू हो गया था। व्यापार की उन्नति के कारण नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में नए वर्गा का उदय हो रहा था।
- इस समय व्यापार मुख्यतः अरब सागर के तटवर्ती बंदरगाहों पर होता था। इस काल में बारबेरिकस (सिंधु के मुहाने पर), अरिकामेडु (पूर्वी तट पर), बेरीगाजा या भड़ौच (पश्चिमी तट पर) आदि महत्वपूर्ण बंदरगाह थे।
- कुषाणों ने चीन से ईरान तथा पश्चिम एशिया तक जाने वाले रेशम मार्ग पर नियंत्रण कर रखा था। रेशम मार्ग आय का बहुत बड़ा स्रोत था।
- प्रथम शताब्दी ई. में अज्ञात यूनानी नाविक ने अपनी 'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी' नामक पुस्तक में भारत द्वारा रोम को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं का विवरण दिया है।
- रोम को निर्यातित प्रमुख वस्तुएं-मसाले, काली मिर्च, मलमल, हाथी दांत की वस्तुएं, इत्र, चंदन, कछुए की खोपड़ी, केसर, जटामासी, हीरा, रत्न, तोता, शेर, चीता आदि थीं।
- पश्चिम के लोगों को भारतीय काली मिर्च (गोल मिर्च) इनती प्रिय थी कि संस्कृत में काली मिर्च का नाम ही 'यवनप्रिय' पड़ गया।
- ईसा की पहली सदी में हिप्पालस नामक ग्रीक नाविक ने अरब सागर से चलने वाले मानसून हवाओं की जानकारी दी।
- रोम से आयातित वस्तुएं - शराब के दो हत्थे वाला कलश, शराब, सोना एवं चांदी के सिक्के, पुखराज, टिन, तांबा, शीशा, लाल आदि।

शिल्प एवं उद्योग

- व्यापार एवं विनिमय में मुद्राओं का प्रयोग मौर्योत्तर युग की सबसे बड़ी देन है।
- इस काल का प्रमुख उद्योग वस्त्र उद्योग था।
- व्यापारिक प्रगति के कारण शिल्पकारों ने शिल्प श्रेणियों को संगठित किया। श्रेणियों के पास अपना सैन्य बल होता था।
- श्रेष्ठियों को उत्तर भारत में सेठ एवं दक्षिण भारत में शेट्टि या चेट्टियार कहा जाता था।

मौर्योत्तरकालीन सामाजिक व्यवस्था:

- इस काल में बड़ी संख्या में विदेशियों का समाज में आगमन हुआ और उन्हें आत्मसात् किया गया। इसी क्रम में विदेशियों को 'व्रात्यक्षत्रिय' का दर्जा दिया गया।
- मौर्योत्तर काल में परंपरागत चारों वर्ण-ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मौजूद थे, किन्तु शिल्प एवं वाण्ज्यि में उन्नति का फायदा शूद्रों को मिला।
- मौर्योत्तर काल में ही शैव धर्म के अन्तर्गत 'पाशुपत संप्रदाय' का विकास हुआ, जिसके प्रवर्तक 'लकुलिश' को माना जाता है।
- इस काल में भागवत धर्म का विकास हुआ, जो वैष्णव संप्रदाय से जुड़ा था। कृष्ण के उपासक 'भागवत' कहलाते थे।
- सातवाहन शासकों के नाम का मातृप्रधान होना, स्त्रियों की अच्छी दशा को दर्शाता है। स्त्रियां धार्मिक कार्यों में पति के साथ भाग लेती थीं। कभी-कभी वे शासन कार्यों में भाग लेती थीं।
- विभिन्न धर्मों ने लचीला रूख अपनाते हुए विदेशियों को शामिल करने का प्रयास किया। यूनानी, शक, पार्थियन और कुषाण सभी भारत में अपनी-अपनी पहचान अंततः खो बैठे। वे समाज के क्षत्रिय वर्ग में समाहित हो गए।
- अनार्यों तथा विदेशी जातियों के कारण आर्यों ने अपनी सामाजिक रक्षा के लिए कई प्रयास किए। इसके कारण सामाजिक संकीर्णता का उत्पन्न होना निश्चित ही था। मनु ने 57 जातियों का उल्लेख किया है, जो यह दर्शाता है कि इस समय नयी जातियों का विकास चरम पर था।
- मनु ने शूद्रों के विषय में यह व्यवस्था बनाई कि ये तीनों वर्ण - ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करे। उन्हें वेद मंत्रों के उच्चारण से तो वंचित कर दिया गया, लेकिन उन्हें अपने विवाह कार्यो को करने तथा श्राद्ध करने की स्वतंत्रता दी गई। शूद्रों को वैश्यों के समान व्यापार की शिक्षा दी गई थी, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ था। इस काल में अनार्यों को 'दस्यु' कहा जाता था। मनु ने अनार्य को 'दस्यु' तथा 'म्लेच्छ' संज्ञा से अभिहित किया है।

मौर्योत्तरकाल में स्त्रियों की स्थिति:

- इस काल में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे- आर्ष, दैव, ब्राम्ह और प्रजापत्य विवाह को विधिसम्मत तथा पैशाच, राक्षस, असुर और गन्धर्व विवाह को हेय समझा जाता था।
- पति द्वारा पत्नी को शारीरिक दण्ड देने की व्यवस्था थी। विधवा विवाह को मान्यता नहीं प्राप्त थी। सती प्रथा का प्रचलन नहीं था।
- स्त्रियों की स्वतंत्रता प्रतिबंधित थी तथा समाज पितृप्रधान था। वैश्यावृत्ति का भी प्रचलन था। स्त्री के धन में से पुत्र तथा पुत्री की समान भागीदारी थी, जबकि पुरूष के धन पर सिर्फ पुत्र का अधिकार था।

धर्म:

कनिष्क ने बौद्ध धर्म की महायान शाखा को राज्याश्रय प्रदान किया। यद्यपि कनिष्क बौद्ध हो गया था, तथापि उसने अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णुता का भाव रखा। उसके सिक्कों पर बुद्ध की आकृति के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की आकृतियां भी मिलती हैं।

- बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन धर्म में भी परिवर्तन आया। ईसा की पहली शताब्दी में जैन धर्म विभाजित हो गया।
- रूढ़िवादी जैनों को दिगंबर तथा उदारवादी जैनों को श्वेतांबर कहा गया है। जैन धर्म के अनुयायियों ने मथुरा में मूर्तिकला की एक शैली को प्रश्रय दिया, जहां शिल्पियों ने महावीर की एक मूर्ति का निर्माण किया। यह कला-शैली 'मथुरा शैली' के नाम से प्रसिद्ध हुई। गांधार में ई.पू. प्रथम शताब्दी में बुद्ध की मूर्ति के निर्माण की एक कला का विकास हुआ, जिसे 'गांधार-शैली' या 'ग्रीक-बौद्ध' शैली कहा गया। 'मथुरा कला' को आदर्शवादी कला और 'गांधार कला' को यथार्थवादी कला कहा जा सकता है।

सातवाहन वंश

सातवाहन वंश का उद्भव दक्षिण भारत है। आन्ध्र से सम्बन्धित होने के नाते इन्हें आन्ध्र या आन्ध्र-सातवाहन भी कहा जाता है। सातवाहन शब्द कुल या वंश का बोधक है, आन्ध्र एक विशेष क्षेत्र में रहने वाले समान भाषा और परम्पराओं से जुड़े लोगों का। सातवाहन राजवंश की स्थापना पहली शताब्दी ई। में हुई थी। सातवाहन ने दक्षिण भारत के पश्चिम और दक्षिण में अपने राज्य की स्थापना की थी। दककन और मध्य भारत में मौर्यों के सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तराधिकारी सातवाहन थे।

सातवाहन वंश का प्रारम्भिक राजा सिमुक था। इस वंश के राजाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों से जमकर संघर्ष किया था। इन राजाओं ने शक आक्रांताओं को सहजता से भारत में पैर नहीं जमाने दिये।

सातवाहन वंश के राजाओं के नाम निम्नलिखित हैं-

1. सिमुक
2. सातकर्णि
3. गौतमीपुत्र सातकर्णि
4. वासिष्ठी पुत्र पुलुमावि
5. कृष्ण द्वितीय सातवाहन
6. राजा हाल
7. महेन्द्र सातकर्णि
8. कुन्तल सातकर्णि

सिमुक

पुराणों के प्रमाण के अनुसार 28 ई०पू० सिमुक (या शिमुक या सिन्धुक) नामक आन्ध्र ने (जो सम्भवतः कण्व शक्ति का नायक या सेनापति था) ने कण्व वंश के अन्तिम राजा सुशर्मन की हत्या करके सत्ता हथिया ली। सम्भवतः उसने शुंगो (कण्वों के पूर्व शासकवंश) के कुछ वंशजों को भी मारा जो मध्य भारत और दक्षिण बिहार में रह रहे थे। उसने 23 वर्ष तक शासन किया।

गौतमीपुत्र शातकर्णी

लगभग 100 वर्षों के पराभव काल के व्यतीत हो जाने बाद गौतमीपुत्र शातकर्णी नामक सातवाहन के राजा ने (पुराणों के अनुसार वह सातवाहन वंश का 23वाँ राजा था) अपने वंश की खोयी हुई प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य को पुनः प्राप्त कर लिया। उसने सन् 106 ई० से 130 ई० तक राज किया। उसने स्वयं को ब्राह्मण बताया। उसने शकों, यवनों, पार्थियनों, आदि का नाश किया। इतिहासकार गौतमी पुत्र शातकर्णी को इस बात का श्रेय देते हैं कि उसने विदेशियों को अपने राज्य से भगा दिया तथा सातवाहन शासन को दक्षिण में सुदृढ़ किया। वस्तुतः वह अपने वंश का सबसे प्रतापी शासक था। उसने सम्पूर्ण दक्षिण भारत तथा मध्य भारत को अपने अधीन किया। वह वीर होने के साथ-साथ एक सफल शासक भी था। वह अपनी प्रजा के सुख के लिए सदैव चिन्ता किया करता था। इसने अपनी प्रजा पर अधिक कर नहीं लगाये तथा वैदिक धर्म के प्रसार में योगदान दिया।

यज्ञ श्री शातकर्णी

यज्ञ श्री शातकर्णी सातवाहन वंश का अन्तिम पराक्रमी सम्राट् था। उसने 27 वर्षों (165-192 ई।) तक शासन किया। उसका शासन महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश दोनों पर था। उसने रूद्रदायन के उत्तराधिकारियों से उत्तरी कोंकण को अपने आधिपत्य में कर लिया था। थाना और नासिक के जनपदों में जो अभिलेख मिले हैं उनसे यह सिद्ध हो जाता है कि यज्ञ श्री शातकर्णी का राज्य काफी दूर तक फैला था। उसके समय में व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। उसने अपने पूर्वजों को पुनःस्थापित करने का प्रयास किया।

सातवाहन वंश का शासन प्रबंध:

सातवाहन राजाओं ने अपने साम्राज्य में एक सुदृढ़ शासन प्रबंध की व्यवस्था की थी और इसीलिए वे विदेशियों को दक्षिण से आने से रोक सके। धर्म शास्त्रों के आदर्शों के अनुरूप उन्होंने राजतंत्रात्मक शासन स्थापित किया था । फिर भी उन्होंने स्थानीय और ग्रामीण संस्थाओं को स्वशासन का अधिकार दे रखा था।

शासन का प्रमुख राजा था। कुषाणों की भांति सातवाहन राजाओं को ईश्वरीय शक्तियां प्राप्त थी। उसकी तुलना राम, अर्जुन और भीम से की जाती थी। राजा का मूल्य कर्तव्य साम्राज्य की सुरक्षा करना और उसे बढ़ाना था। युद्ध के समय वही सेनानायक होता था। शासन कार्य में उसकी सहायता के लिए अमात्य, सचिव, महापात्र और प्रतिहार जैसे अधिकारी थे। सामन्तों की तीन श्रेणियां थी- राजा, महाभोज और महारथी, सेनापति। सेनापति का पद महत्वपूर्ण था। वह सेना का संचालन करने के साथ प्रान्तीय शासक (राज्यपाल) भी होता था। सातवाहन अभिलेखों में कटक और स्कंधावर जैसे शब्दों का आम प्रयोग किया गया है। इससे ही पता चलता है कि सातवाहन शासन का सैनिक चरित्र था। ये सैनिक शिविर और उपनिवेश होते थे जो अस्थायी राजधानी और प्रशासनिक इकाई के रूप में कार्य करते थे।

समस्त सातवाहन साम्राज्य जपनदों (प्रान्तों) और आहरों (जिलों) में बंटा हुआ था। कुछ आहरों का उत्तरदायित्व अमात्यों पर था। कहीं-कहीं आहर महामात्र के नियन्त्रण में होते थे। सातवहान काल में नगर प्रशासन का उत्तरदायित्व निगम जैसी संस्थाओं के हाथ में था। गांव का प्रबंध ग्राम पंचायत करती थी जिसकी सहायता के लिए ग्रामिक नाम का एक अधिकारी होता था। गोल्मिक नामक अधिकारी ग्रामीण क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखता था। सातवाहन काल में ब्राम्हणों और बौद्ध भिक्षुओं को कर मुक्त भूमि देने की प्रथा थी। यह भूमि राजकीय अधिकारियों के हस्तक्षेप से मुक्त थी। भू-स्वामी ही कर वसूल करते और शान्ति बनाए रखते थे। इस प्रकार अनुदान या उपहार में मिली भूमि पर ये स्वतन्त्र शासक के समान थे। भूमि अनुदान प्रथा से सातवाहन शासन काल में सामन्तवाद को प्रोत्साहन मिला। शक्तिशाली सामन्तों का उदय ही अन्य में सातवाहनों के साम्राज्य के विघटन के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुआ। सातवाहन शासन का प्रमुख राजा था। समस्त साम्राज्य जनपदों, आहरों और ग्रामों में बंटा हुआ था। सातवाहन राजा नागरिक अधिकारियों और धार्मिक व्यक्तियों को कर मुक्त भूमि देते थे। वे अपने क्षेत्र में कर वसूल करते और व्यवस्था बनाए रखते थे। सातवाहन प्रशासन सैनिक चरित्र का था।

आर्थिक दशा:

सातवाहन काल में आर्थिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण उन्नति हुई । विदेशी व्यापार और आन्तरिक अर्थव्यवस्था समृद्ध थी । अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि था । सातवाहन अभिलेखों में बहुधा गाय, भूमि और गांव उपहार रूप में देने का उल्लेख आता है । इससे पता चलता है कि भूमि और कृषि कितनी महत्वपूर्ण थी । लोहे के औजारों और धान रोपने की जानकारी ने कृषि उत्पादन बढ़ाने में बहुत योगदान दिया। चावल मुख्य भोजन था । यहां धान के अतिरिक्त गेहूं, दाल, ज्वार, बाजरा, लौंग, तिल, काली मिर्च और कपास की भी खेती की जाती थी ।

राजा कृषि उत्पादन का 1/6 भाग किसानों से कर के रूप में लेता था । यह 'भाग' कहलाता था । जो भूमि राजकीय कर्मचारियों या धार्मिक व्यक्तियों को अनुदान रूप में मिली होती थी उसका लगान भूमि-स्वामी ही लेते थे । इस लगान पर राजा का कोई अधिकार नहीं होता था। राजा 'भोग' नामक कर भी वसूल करता था । खानों और नमक भण्डारों पर राजा का एकाधिकार था ।

सातवाहन काल में उद्योग और शिल्प उन्नत दशा में थे। समकालीन प्रमाणों में कुम्हार (मिट्टी का काम करने वाले) तेली (तेल बनाने वाले) बढ़ई (बांस का काम करने वाले) लोहार और सुनार आदि शिल्पकारों का उल्लेख है। प्रत्येक व्यवसाय श्रेणी (गिल्ड) में संगठित था। इसका प्रमुख श्रेष्ठी या सेठी कहलाता था। श्रेणी धर्म या गिल्ड के नियमों को कानूनी दर्जा प्राप्त था। श्रेणी के सदस्यों को सुरक्षा के साथ-साथ मान-प्रतिष्ठा भी मिलती थी। श्रेणी की मुख्य विशेषता थी बैंकों की भांति रूपये का लेन-देन करना। यह जनसाधारण से धन लेती और उन्हें ऋण देती

थी। श्रेणी लोकहित के लिए मन्दिर, बाग, विश्रामगृह आदि बनवाती थी। राज्य भी प्रत्यक्ष रूप में श्रेणी के कार्यो में रूचि लेता था।

सातवाहन काल में मौद्रिक अर्थव्यवस्था (पूंजीवादी अर्थव्यवस्था) विकसित हुई थी। सातवाहनों के कम मूल्य के अनेक सिक्के साम्राज्य के बहुत बड़े भाग में मिले है। इसी काल में अनेक समृद्ध नगरों का विकास हुआ। प्रतिष्ठान, नासिक, जूनागढ़ और वैजयन्ती जैसे नगर व्यापारिक केन्द्र बन गए। 'पीरिप्लस' आफ दि एरिथियन सी' नामक पुस्तक में भढौच, सोपरा और कल्याणी नामक बन्दरगाहों का उल्लेख मिलता है। सातवाहनों की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के कारण व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला। सातवाहन पश्चिमी तट से पश्चिमी देशों से व्यापार करते थे। व्यापार उन्नत था।

'पोरिप्लस आफ द एरिथियन सी' नामक पुस्तक के अनुसार सारे भारत और चीन में चीजें पहले भडोच मे शातकर्णीएकत्र की जाती थीं और फिर वहां से रोम साम्राज्य को भेजी जाती थी। इसी पुस्तक के अनुसार भारत से हाथी दांत, (रेशम) सिल्क, कालीमिर्च, धागा, हीरे और मोती निर्यात किए जाते थे। रोम साम्राज्य से आयात की जाने वाली वस्तुएं थी- पुखराज, टिन, सीसा, चकमक पत्थर, शीश और सोने चांदी के सिक्के। दर्शन दक्षिण में लोकप्रिय हो चुका था। सातवाहन शासकों का दावा है कि उन्होंने अश्वमेघ, बाजपेय और राजसूय जैसे वैदिक अनुष्ठान तथा यज्ञ किए थे।

शातकर्णी प्रथम ने ब्राम्हणों को गाय, हाथी, धन आदि दक्षिणा रूप में दिए। आपको याद होगा कि ब्राम्हणों को भूमि भी उपहार रूप में दी गई थी। सातवाहन शासकों ने बौद्ध धर्म को भी प्रोत्साहन दिया था। इस काल के बहुत से स्तूप और चैत्य व्यापारियों द्वारा दिए गए दान से ही बने थे। इस काल में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता को सिद्ध करते है नासिक, कार्ले, अमरावती और नागर्जुकोंडा के स्मारक। जब जैन धर्म उत्तर में अपना प्रभुत्व खो बैठा तो सातवाहन काल में दक्षिण मे शातकर्णीस्थापित हुआ।

सांस्कृतिक विकास:

सातवाहन राजा कला और साहित्य के महान पोषक थे। इस काल की कला में प्रचलित धार्मिक विश्वास अभिव्यक्त किए जाते थे। सातवाहन शासकों के संरक्षण में अनेक बौद्ध बिहार और चैतय बने। नासिक और कर्ले के विहार बहुत प्रसिद्ध है। ये सुन्दर निर्माण एक ही चट्टान को काट कर तैयार किए गए थे। इस काल में अनेक स्तूप भी बनाए गए। अमरावती और नागार्जुनकोंडा के स्तूप अधिक महत्वपूर्ण है। अमरावती का स्तूप मूर्तियों से सजा है। ये मूर्तियां युद्ध के जीवन के विभिन्न दृश्य प्रदर्शित करती है जो कलाकृतियाँ स्मारकों पर दिखाई देती हैं। ये कला और मूर्तिकला के उन्नत होने का प्रमाण है।

सातवाहन शासक प्राकृत भाषा के संरक्षक थे। मौर्यकाल की भांति सभी अभिलेख प्राकृत भाषा में रचे गए और ब्राम्हणी लिपि में लिखे गए थे। साहित्य रचनाओं में प्रसिद्ध हैं- सातवाहन राजा हाल द्वारा छद्मनाम से लिखी गई, 700 पद्यों वाली 'गाथा सप्तशती' और गुणाध्या द्वारा लिखित 'वृहत् कथा'।

सातवाहन काल में कला और साहित्य का विकास उच्च कोटि का था। वास्तुकला के सुन्दर नमूने हैं, बौद्ध चैतय, बिहार और स्तूप जो एक ही चट्टान को काटकर बनाए गए है। साहित्य के क्षेत्र में कहा जा सकता है कि सातवाहन राजाओं न "प्राकृत" भाषा को संरक्षण प्रदान किया।

संगम युग

यह कालखण्ड ईसापूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर चौथी शताब्दी तक पसरा हुआ है। यह नाम 'संगम साहित्य' के नाम पर पड़ा है। संगम से अभिप्राय तमिल कवियों के संगम या सम्मलेन से है जो संभवतः किन्हीं प्रमुखों या राजाओं के संरक्षण में ही आयोजित होता था। आठवीं सदी ई। में तीन संगमों का वर्णन मिलता है। पाण्ड्य राजाओं द्वारा इन संगमों को शाही संरक्षण प्रदान किया गया।

माना जाता है कि प्रथम संगम मदुरै में आयोजित किया गया था। इस संगम में देवता और महान संत सम्मिलित हुए थे। किन्तु इस संगम का कोई साहित्यिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। द्वितीय संगम कपाटपुरम् में आयोजित किया गया था, और इस संगम का 'तोलकाप्पियम्' नामक एकमात्र ग्रंथ उपलब्ध है जो तमिल व्याकरण ग्रन्थ है। तृतीय संगम भी मदुरै में हुआ था। इस संगम के अधिकांश ग्रंथ नष्ट हो गए थे। इनमें से कुछ सामग्री समूह ग्रंथों या महाकाव्यों के रूप में उपलब्ध है। 600 ई.पू. से 300 ई.पू. के बीच की अवधि, तमिलकम में पांड्य, चोल और चेर के तीन तमिल राजवंशों और कुछ स्वतंत्र सरदारों, वेलिर का शासन था।

संगम साहित्य

संगम साहित्य मुख्य रूप से तमिल भाषा में लिखा गया है, संगम युग की प्रमुख रचनाओं में तोलकाप्पियम्, एतुत्तौके, पत्तुप्पातु, पदिनेकिल्लकणक्कु इत्यादि ग्रंथ तथा शिलप्पादिकारम्, मणिमेखलै और जीवक चिंतामणि महाकाव्य शामिल हैं।

- तोलकाप्पियम् के लेखक तोलकाप्पियर हैं। यह द्वितीय संगम का उपलब्ध एकमात्र प्राचीनतम ग्रंथ है। यह व्याकरण से संबंधित एक ग्रंथ है, साथ ही यह उस समय की राजनीतिक और सामाजिक - आर्थिक स्थितियों की जानकारी भी प्रदान करता है।
- पदिनेकिल्लकणक्कु 18 कविताओं वाला एक आचारमूलक ग्रंथ है तथा यह तृतीय संगम साहित्य से संबंधित है। इन 18 कविताओं में महत्त्वपूर्ण कविता तमिल के महान कवि और दार्शनिक तिरुवल्लुवर द्वारा लिखित तिरुक्कुरल है। इसे तमिल साहित्य का बाइबिल अथवा पंचम वेद भी माना जाता है।
- शिलप्पादिकारम् 'इलांगोआदिगल' द्वारा और मणिमेखलै 'सीतलैसत्तनार' द्वारा लिखे गए महाकाव्य हैं। इन महाकाव्यों द्वारा तत्कालीन संगम समाज और राजनीति के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

संगम काल का राजनीतिक इतिहास:

संगम काल में दक्षिण भारत पर तीन राजवंशों ने शासन किया- चेर, चोल तथा पाण्ड्य राजवंशपाण्ड्य। संगम काल के साहित्य से इन राज्यों के बारे में जानकारी मिलती है।

चेर:

चेरों ने उस क्षेत्र पर शासन किया जो वर्तमान समय में केरल के मध्य और उत्तरी भाग तथा तमिलनाडु का कोंगु क्षेत्र है। उनकी राजधानी वांजि थी। पश्चिमी तट, मुसिरी और टोंडी के बंदरगाह उनके नियंत्रण में थे।

चेरों का प्रतीक चिह्न "धनुष-बाण" था। ईसा की पहली शताब्दी के पुगलुर शिलालेख से चेर शासकों की तीन पीढ़ियों की जानकारी मिलती है। चेर राजा रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार से लाभ प्राप्त करते थे। कहा जाता है कि उन्होंने ऑगस्टस का एक मंदिर भी बनवाया गया था। चेरों के सबसे महान राजा शेनगुटटवन (सेंगुत्तुवन) थे जिन्हें 'लाल चेर' या 'अच्छे चेर' भी कहा जाता था। शेनगुटटवन ने चेर राज्य में पत्तिनी (पत्नी) पूजा प्रारम्भ की। इसे कण्णगी पूजा भी कहा गया।चोल:

चोलों के नियन्त्रण में वह क्षेत्र था जो वर्तमान तमिलनाडु का मध्य और उत्तरी भाग है। उनके शासन का मुख्य क्षेत्र कावेरी डेल्टा था जिसे बाद में 'चोलमण्डलम' के नाम से जाना जाता था। चोलों की राजधानी उरैयूर (तिरुचिरापल्ली के पास) थी। बाद में करिकाल ने कावेरीपत्तनम या पुहार नगर की स्थापना कर उसे अपनी राजधानी बनाया। इनका प्रतीक चिह्न बाघ था। चोलों के पास एक कुशल नौसेना भी थी।

करिकाल चोल राजाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शासक हुआ। पत्तिनप्पालै में उनके जीवन और सैन्य अधिग्रहण को दर्शाया गया है। संगम साहित्य की विभिन्न कविताओं में वेण्णि के युद्ध का उल्लेख मिलता है जिसमें करिकाल ने पाण्ड्य तथा चेर सहित ग्यारह राजाओं को पराजित किया था। करिकाल की सैन्य उपलब्धियों ने उन्हें पूरे तमिल क्षेत्र का अधिपति बना दिया। करिकाल ने अपने शासनकाल में व्यापार और वाणिज्य क्षेत्र को संपन्न बनाया। उसने पुहार या कावेरीपत्तनम शहर की स्थापना की और अपनी राजधानी उरैपुर से कावेरीपत्तनम में स्थानांतरित की। इसके अतिरिक्त कावेरी नदी के किनारे 160 किमी। लम्बा बांध बनवाया।

पाण्ड्य:

पाण्ड्यों ने मदुरै से शासन किया। उनका राज्य भारतीय प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी भाग में था। कोरकई इनकी प्रारंभिक राजधानी थी जो बंगाल की खाड़ी के साथ थम्परपराणी के संगम के पास स्थित थी। पाण्ड्य वंश का प्रतीक चिह्न 'मछली' थी।

पाण्ड्योण ने तमिल संगमों का संरक्षण किया और संगम कविताओं के संकलन की सुविधा प्रदान की। शासकों ने एक नियमित सेना बनाए रखी। संगम साहित्य के अनुसार, पाण्ड्य राज्य धनी और समृद्ध था।

पाण्ड्यों का पहला उल्लेख मेगास्थनीज ने किया है। उसने इस राज्य को मोतियों के लिये प्रसिद्ध बताया था। समाज में विधवाओं के साथ बुरा व्यवहार किया जाता था। इस राज्य में ब्राह्मणों का काफी प्रभाव था तथा ईसा के शुरूआती शताब्दियों में पाण्ड्य राजा वैदिक यज्ञ करते थे। कलभ्रस नामक जनजाति के आक्रमण के साथ उनकी शक्ति का क्षय हुआ।

संगम राजव्यवस्था और प्रशासन:

- संगम काल के दौरान वंशानुगत राजतंत्र का प्रचलन था।
- संगम युग के प्रत्येक राजवंश के पास शाही प्रतीक था। जैसे- चोलों के लिये बाघ, पाण्ड्यों के लिये मछली और चेरों के लिये धनुष।
- राजा की शक्ति पर पाँच परिषदों का नियंत्रण था, जिन्हें पाँच महासभाओं के नाम से जाना जाता था।
- मंत्री (अमैच्चार), पुरोहित (पुरोहितार), दूत (दूतार), सेनापति (सेनापतियार) और गुप्तचर (ओर्रार) थे।
- सैन्य प्रशासन का संचालन कुशलतापूर्वक किया गया जाता था और प्रत्येक शासक के साथ एक नियमित सेना जुड़ी हुई थी।

- राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि राजस्व था, जबकि विदेशी व्यापार पर सीमा शुल्क भी लगाया गया था।
- युद्ध में लूटी गई संपत्ति को भी राजकोषीय आय माना जाता था।
- डकैती और तस्करी को रोकने के लिये सड़कों और राजमार्गों की उचित व्यवस्था को बनाए रखा गया था।

संगम समाज:

- पुरुनानरु नामक ग्रंथ में चार वर्गों तुड़ियन, पाड़न, पड़ैयन और कड़म्बन का उल्लेख मिलता है।
- पुरुनानरू नामक ग्रंथ में चार वर्गों का उल्लेख मिलता है -जैसे- शुड्डुम वर्ग (ब्राह्मण एवं बुद्धिजीवी वर्ग), अरसर वर्ग (शासक एवं योद्धा वर्ग), बेनिगर वर्ग (व्यापारी वर्ग) और वेल्लाल वर्ग (किसान वर्ग)।
- संगम कविताओं में भूमि के पाँच मुख्य प्रकार पाए जाते हैं - मुल्लै (देहाती), मरुदम (कृषि), पालै (रेगिस्तान), नेथल (समुद्रवर्ती) और कुरिंचि (पहाड़ी)।
- प्राचीन आदिम जनजातियाँ जैसे- थोडा, इरुला, नागा और वेदर इस काल में पाई जाती थीं।
- एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इस युग में दास-प्रथा का आभाव था।

संगम युग के दौरान महिलाओं की स्थिति:

- संगम युग के दौरान की महिलाओं की स्थिति को समझने के लिये संगम साहित्य में काफी जानकारी उपलब्ध है।
- महिलाओं का सम्मान किया जाता था और उन्हें बौद्धिक गतिविधियों के संचालन की अनुमति थी। ओबैयार **(Avvaiyar)**, नच्चेलियर **(Nachchellaiyar)** और काकईपाडिन्यार **(Kakkaipadiniyar)** जैसी महिला कवयित्री थीं, जिन्होंने तमिल साहित्य में उत्कर्ष योगदान दिया।
- महिलाओं को अपन जीवन साथी चुनने की अनुमति थी लेकिन विधवाओं का जीवन दयनीय था।
- समाज में उच्च स्तर पर सती प्रथा के प्रचलन का उल्लेख मिलता है।

धर्म:

- संगम काल के प्रमुख देवता मुरुगन थे, जिन्हें तमिल भगवान के रूप में जाना जाता है।
- दक्षिण भारत में मुरुगन की पूजा सबसे प्राचीन मानी जाती है और भगवान मुरुगन से संबंधित त्योहारों का संगम साहित्य में उल्लेख किया गया था।
- संगम काल के दौरान पूजे जाने वाले अन्य देवता मयोन (विष्णु), वंदन (इंद्र), कृष्ण, वरुण और कोर्रावई थे।
- संगम काल में नायक पाषाण काल की पूजा महत्त्वपूर्ण थी जो युद्ध में योद्धाओं द्वारा दिखाए गए शौर्य की स्मृति के रूप में चिह्नित किये गए थे।
- संगम युग में बौद्ध धर्म और जैन धर्म का भी प्रसार दिखाई पड़ता है।

संगम युग की अर्थव्यवस्था:

- कृषि मुख्य व्यवसाय था और चावल सबसे आम फसल थी।
- हस्तकला में बुनाई, धातु के काम और बढ़ईगीरी, जहाज़ निर्माण और मोतियों, पत्थरों तथा हाथी दाँत का उपयोग करके आभूषण बनाना शामिल था।
- संगम युग की महत्त्वपूर्ण विशेषता इसका आंतरिक और बाहरी व्यापार था।
- सूती और रेशमी कपड़ों की कताई एवं बुनाई में उच्च विशेषज्ञता प्राप्त थी। पश्चिमी देशों में विशेष रूप से उरियुर में बुने हुए सूती कपड़ों की बहुत मांग थी।
- पुहार शहर विदेशी व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया, क्योंकि कीमती सामान वाले बड़े जहाज़ इस बंदरगाह में प्रवेश करते थे।
- वाणिज्यिक गतिविधि के लिये अन्य महत्वपूर्ण बंदरगाह तोंडी, मुशिरी, कोरकई, अरिकमेडु और मरक्कानम थे।
- ऑगस्टस, टाइबेरियस और नीरो जैसे रोमन सम्राटों द्वारा जारी किये गए कई सोने और चाँदी के सिक्के तमिलनाडु के सभी हिस्सों में पाए गए हैं जो समृद्ध व्यापार का संकेत देते हैं।
- संगम युग के प्रमुख निर्यात में सूती कपड़े और मसाले जैसे- काली मिर्च, अदरक, इलायची, दालचीनी और हल्दी के साथ-साथ हाथी दाँत के उत्पाद, मोती और बहुमूल्य रत्न आदि प्रमुख थे।
- व्यापारियों द्वारा आयातित वस्तुओं में घोड़ा, सोना, चाँदी और मीठी शराब आदि प्रमुख थे।

गुप्त राजवंश

गुप्त राजवंश प्राचीन भारत के प्रमुख राजवंशों में से एक था। कुछ इतिहासकारों द्वारा इस अवधि को भारत का स्वर्ण युग माना जाता है। मौर्य वंश के पतन के बाद दीर्घकाल में हर्ष तक भारत में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं रही। मौर्य वंश के पतन के पश्चात नष्ट हुई राजनीतिक एकता को पुनः स्थापित करने का श्रेय गुप्त वंश को है।

गुप्त सामाज्य का उदय तीसरी शताब्दी के अन्त में प्रयाग के निकट कौशाम्बी में हुआ था। जिस प्राचीनतम गुप्त राजा के बारे में पता चला है वो है श्रीगुप्त। हालांकि प्रभावती गुप्त के पूना ताम्रपत्र अभिलेख में इसे 'आदिराज' कहकर सम्बोधित किया गया।

चन्द्रगुप्त प्रथम:

कुषाणकाल में मगध की शक्ति और महत्ता समाप्त हो गई थी। चन्द्रगुप्त प्रथम ने इसको पुनः स्थापित किया। उसने साकेत (अयोध्या) और प्रयाग (इलाहाबाद) तक मगध का विस्तार किया। वह पाटलिपुत्र से शासन करता था। उसने लिच्छवी वंश की राजकुमारी से विवाह किया था। इस सम्बन्ध से मगध तथा लिच्छवियों के बीच सम्बन्ध अच्छे हुए और गुप्तवंश की प्रतिष्ठा बढ़ी। चन्द्रगुप्त ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी।

समुद्रगुप्त:

समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त प्रथम का पुत्र था। सभी गुप्त शासकों में वह सबसे महान था। वह एक कुशल योद्धा, विद्वान, संगीतग्य और कवि था। इसके साथ ही वह एक कुशल शासक भी था। उसने खुद हिन्दू धर्म का अनुयायी होते हुए भी बौद्ध और जैन धर्मों का सम्मान किया। उन धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति उसने अपनाई।

इतिहास में समुद्रगुप्त का नाम एक विजेता और साम्राज्य निर्माता के रूप में लिया जाता है। उसके विजय अभियान के विषय में हमें इलाहाबाद की प्रशस्ति से पता चलता है।एरण अभिलेख और सिक्कों से भी समुद्रगुप्त के समय की जानकारी मिलती है। उस समय की अधिकांश प्रशस्तियाँ राजाओं के पूर्वजों के सम्बन्ध में जानकारी देती हैं। इलाहाबाद प्रशस्ति के अलावा समुद्रगुप्त के बारे में चन्द्रगुप्त द्वितीय की “वंशावली” (पूर्वजों की सूची) से भी जानकारी मिलती है। ये स्रोत हमें बताते हैं कि समुद्रगुप्त ने भी महाराजधिराज की उपाधि धारण की थी।

समुद्रगुप्त के दरबारी कवि हरिसेण ने संस्कृत में प्रशस्ति लिखी है और बताया है कि समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत के 9 राज्यों को हराया था। ये राज्य थे - दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र

आदि, जिनको उसने अपने साम्राज्य में मिलाया था। समुद्रगुप्त ने दक्षिण के 12 राज्यों को भी जीता था। ये राज्य थे - उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, पल्लव आदि। अभिलेख (edicts) बताते हैं कि इन राज्यों के समर्पण के बाद समुद्रगुप्त ने इनका राज्य वापस कर दिया, परन्तु इस शर्त पर कि ये उसको नियमित कर और नजराना देते रहेंगे। समुद्रगुप्त ने मध्य भारत की जंगली जातियों को भी अपने अधीन किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य):

समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय हुआ। इसका दूसरा नाम देवराज या देवगुप्त भी था। यह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम से भी जाना जाता था। महरौली लौह स्तम्भ से इसके बारे में जानकारी मिलती है। माना जाता है कि जब राज्गुप्त अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को शक शासक को सौंपने के लिए तैयार हुआ तब चन्द्रगुप्त ने शक खेमे घुसकर शक शासक को मार डाला। बाद में उसने रामगुप्त को मार डाला और ध्रुवदेवी से शादी करके खुद राजा बन गया।

उदयगिरि, साँची, मथुरा के अभिलेख, महरौली (दिल्ली) के लौह-स्तम्भ अभिलेख और सिक्के चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय की जानकारी के स्रोत हैं। इन स्रोतों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुजरात, मालवा और सौराष्ट्र के शकों को हराकर उनके क्षेत्रों को अधीन कर लिया। इस सफलता से चन्द्रगुप्त द्वितीय को पश्चिमी समुद्रगुप्त प्राप्त हुआ। भड़ौंच, कैम्बे और सोपारा के बंदरगाह पर उसका नियंत्रण हो गया। इस कारण वह अपने राज्य के वाणिज्य-व्यापार को बढ़ा सका। उसने उज्जयिनी को अपनी दूसरी राजधानी बनाई।

स्कन्दगुप्त:

कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त ने शकों तथा हूणों को हराया था। उसने शकरादित्य की उपाधि धारण की थी। इस समय हूणों ने उत्तर पश्चिम से कई बार आक्रमण किया था। गुप्त शासकों ने साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा की व्यवस्था नहीं की थी। इसका लाभ उठाकर हूणों ने भारत पर आक्रमण किया जिससे गुप्त साम्राज्य कमजोर हो गया और उसका पतन होने लगा। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद कई राज्यों का उदय हुआ जिनमें प्रमुख थे - उत्तर भारत में कन्नौज के हर्षवर्धन का राज्य और दक्षिण भारत में वातापी के चालुक्य और काँचीपुरम के पल्लवों का राज्य।

गुप्त साम्राज्य की शासन प्रणाली:

केन्द्र में शासक सबसे बड़ा अधिकारी था. मौर्यों के विपरीत गुप्त वंश के राजाओं ने परमेश्वर, महाराजधिराज जैसी शानदार पदवियाँ ग्रहण कीं। इससे पता चलता है कि उनका साम्राज्य बढ़ गया था तथा आसपास के छोटे-छोटे राजा उनके अधीन थे। राज्य के पास एक स्थायी सेना

होती थी। सामंत समय-समय पर राज्य को सैनिक सहायता देते थे। राजा सेना, न्याय और कानून के लिए अन्तिम अधिकारी था।

चीनी पर्यटक फाहियान के अनुसार गुप्त शासक बहुत योग्य थे। सारी जनता में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। देश में सुख-शान्ति थी। राज्य कर्मचारी भ्रष्ट नहीं थे। राज्य के संरक्षकों और सभी सेवकों को नकद वेतन मिलता था। फाहियान के विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि गुप्त सम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र एक भव्य नगर था। वह इस नगर में अशोक के महल को देखकर बहुत हैरान हुआ। उसने इसमें 67 महलों को देवताओं द्वारा बनाया हुआ बताया है। राज्य हमेशा बड़े बेटे को नहीं मिलता था। राजा मंत्रिमण्डल की राय मानने को बाध्य नहीं था। दण्ड विधान बहुत कठोर नहीं था। उन्होने गुप्तचर विभाग को भी समाप्त कर दिया था।

गुप्त राजाओं ने शासन सुचारु रूप से चलाने के लिए उसे कई प्रांतों में बांट रखा था। प्रान्तों को मुक्ति कहा जाता था। प्रांतीय शासक (गवर्नर या प्रतिनिधि शासक) मौर्य काल की तुलना में अधिक आजाद थे। उदाहरण के लिए उन्हें हर काम के लिए राजा की आज्ञा की जरूरत नहीं। प्रांतीय शासकों की नियुक्ति स्वयं सम्राट करता था। प्रांतीय शासकों का सम्बन्ध ज्यादातर राजकुल से ही होता था। प्रांतीय शासन लगभग केन्द्रीय शासन के अनुरूप ही था। जितने विभाग केन्द्र में थे उतने ही प्रांतों में थे।

आय के साधन:

गुप्तकाल में भूमिकरों की संख्या ज्यादा हो गई। फाहियान के अनुसार, राज्य की आमदनी का मुख्य साधन भूमिकर था जो उपज का 1/6 भाग होता था। इस भू-कर के अतिरिक्त किसानों को आती-जाती सेना को "राशन" तथा पशुओं को चारा भी देना पड़ता था। गांव में जो भी सरकारी अधिकारी रहता था उसे पशु अनाज आदि गांव के लोगों को ही देना पड़ता था। इस प्रकार की बेगार को विष्टि कहा जाता था। किसान पशुओं को चराने के लिए भी कर देते थे। व्यापार और वाणिज्य कर भी राज्य की आमदनी के साधन थे लेकिन इन करों की संख्या में कमी आ गई। चूँकि जुर्माने के रूप में अपराधियों को बड़ी-बड़ी रकमें देनी पड़ती थीं, इससे भी राज्य को बड़ी आय प्राप्त होती थी। चुंगी भी आय का महत्वपूर्ण साधन था।

भूमि अनुदान:

स्मृतिकारों के अनुसार भारत में राजा भूमि का मालिक माना गया है। मनु और गौतम जैसे स्मृतिकारों ने राजा को भूमि का अधिपति बताया है। गुप्त काल में राजाओं को जो भूमिदान या कभी-कभी सारा गाँव दान करते हुए देखा जा सकता है। उससे यही धारणा मजबूत होती है कि गुप्तकाल में शासक भूमि को ब्राहमण, किसी गृहस्थ अथवा किसी राज्याधिकारी को दान देने का अधिकारी था। अगर कोई साधारण व्यक्ति भूमि खरीदता था तो उसे राज्य से अनुमति लेनी पड़ती थी। जमीन को साधारणतया दान में देने के उद्देश्य से खरीदा जाता था। सबसे पहले खरीदने वाला व्यक्ति स्थानीय शासन को सूचित करता था कि वह कौन-सी जमीन किस उद्देश्य से खरीदना चाहता है तथा उस जमीन का जो भी मूल्य होगा, उसे वह देने को तैयार है।

अब जब कोई भूमि खरीदता था या दान में देता था तो उस भूमि की नाप-जोख, सीमा रेखा बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त की जाती थी। गुप्त युग और उसके पश्चात् जैसे-जैसे भूमि मंदिरों और मठों को दान में दी जाने लगीं वैसे-वैसे कृषि मजदूरों की स्थिति गिरती चली गई और वे अर्धदास जैसे हो गये।

गुप्त साम्राज्य के दौरान सामाजिक परिवर्तन

उस काल के लोग सादा जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ उच्च विचार रखते थे। उनका चरित्र एवं नैतिक स्तर बहुत उच्च था। फाह्यान लिखता है, "चाण्डालों को छोड़कर देश भर में कहीं भी लोग किसी जीवित प्राणी को नहीं मारते हैं और न शराब और न नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हैं, न प्याज-लहसुन खाते हैं। अन्तर्जातीय विवाहों के प्रमाण भी मिलते हैं।" संयुक्त परिवार समाज का आधार था। लोग बहुत दानी थे। लोगों के प्रयत्नों से सराएं और अस्पताल चलते थे। अस्पतालों में मुफ्त दवाइयां और चिकित्सा का प्रबन्ध था। कई दृष्टियों से इस काल में शूद्रों और औरतों की स्थिति सुधरी। उन्हें अब महाकाव्यों और पुराणों को सुनने की आज्ञा मिल गई।

वर्ण व्यवस्था

ब्राह्मणों का समाज में बहुत आदर था। उन्हें बड़े पैमाने पर भूमि अनुदानों से मिलती थी। गुप्तकाल में भी भारतीय समाज परम्परागत चार वर्णों के साथ-साथ अनेक जातियों तथा उपजातियों में विभक्त था। दो कारणों से जातियाँ कई उपजातियों में बंट गईं। एक ओर बड़ी संख्या में विदेशियों को भारतीय समाज में आत्मसात् कर लिया गया, और विदेशियों के प्रत्येक समूह की एक प्रकार की हिन्दू जाति मान लिया गया। चूंकि विदेशी मुख्य रूप से विजेताओं के रूप में आये थे, इसलिए उन्हें समाज में क्षत्रियों का दर्जा दिया गया। उदाहरण के लिए हूण लोगों को जो भारत में पांचवी शताब्दी के अन्त में आए, उन्हें आखिरकार राजपूतों के छत्तीस कुलों में से एक के रूप में शामिल कर लिया गया। आज भी कई राजपूत अपने नाम के साथ हूण लिखते हैं। जातियों की संख्या बढ़ने ने का एक अन्य कारण अनेक कबीलाई जनगणों को भूमि अनुदानों द्वारा हिन्दू समाज में मिला लिया जाना था। कबीलों के प्रधानों को प्रतिष्ठा योग्य मूल का कहा गया जबकि शेष कबीलाई जनता को निम्न मूल का बतलाया गया। इस तरह प्रत्येक कबीला हिन्दू समाज की एक जाति बन गया। परन्तु इस काल में अछूतों विशेषकर चण्डालों की संख्या वृद्धि हुई।

चण्डाल भारतीय समाज में पांचवी शताब्दी ई.पू. में प्रकट हुए थे। पांचवीं शताब्दी ई.पू. उनकी संख्या इतनी बढ़ गई तथा इनकी निर्योग्यता इतनी स्पष्ट हो गई कि उन्होंने चीनी पर्यटक फाहियान का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। वह चण्डालों का वर्णन करते हुए लिखता है कि वे गांव के बाहर रहते थे तथा मांस का धंधा करते थे। जब भी चण्डाल नगर में आते थे तो वे एक विशेष प्रकार की आवाज करते हुए आते थे ताकि तथाकथित उच्च जाति के लोग स्वयं

को उनसे दूर रख सकें क्योंकि उन दिनों में ऐसा माना जाता था कि वे सड़क को अपवित्र कर देते हैं। उच्च वर्णों के लोग यद्यपि सामान्यतया वर्ण-व्यवस्था द्वारा निर्धारित कार्य ही करते थे लेकिन वर्गों के आधार पर निर्धारित व्यवसाय के इस बन्धन में शिथिलता आने लग गयी थी। ब्राह्मणों ने अनगिनत भूमि अनुदानों को प्राप्त कर बहुत ज्यादा सम्पत्ति इकट्ठी कर ली थी।

स्त्रियों की स्थिति:

गुप्तकालीन साहित्य और कला में नारी का आदर्शमय चित्रण किया गया है परन्तु व्यवहारिक रूप में उनकी स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक दयनीय हो गई। इसी काल में कन्याओं का अल्पायु में विवाह तथा (कुछ कुलीन लोगों में) सती प्रथा जैसी बुराइयां पुनः प्रचलित होने लगी। नारी को जन्म से मृत्यु तक पुरुष के नियन्त्रण में रहने के निर्देश दिये गये। केवल उच्च वर्ग की स्त्रियों को प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी। प्राय: वे सार्वजनिक जीवन में भाग नहीं लेती थीं। जो थोड़े-बहुत उदाहरण विदुषी तथा कलाकार महिलाओं को प्राप्त होते हैं उन्हें हमें केवल अपवाद मानना याहिए।

लेकिन गुप्त साम्राज्य में पर्दा प्रथा का अधिक विकास नहीं हुआ था। विधवाओं को सामान्यतया पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी। उनके लिए श्वेत वस्त्र धारण करना जरूरी था। इस काल में वेश्या वृत्ति का भी उल्लेख मिलता है। देवदासियों का भी एक वर्ग था जो मन्दिरों के साथ सम्बद्ध था। लेकिन स्त्रियों को सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। उनका पत्नी तथा विशेष परिस्थितियों में पिता की सम्पत्ति पुत्रविहीन पुरुष की कन्याओं के रूप में पाने का अधिकार होता था।

गुप्तकालीन स्थापत्य

गुप्त काल में कला, विज्ञान और साहित्य ने अत्यधिक समृद्धि प्राप्त की। इस काल के साथ ही भारत ने मंदिर वास्तुकला एवं मूर्तिकला के उत्कृष्ट काल में प्रवेश किया। शताब्दियों के प्रयास से कला की तकनीकों को संपूर्णता मिली। गुप्त काल के पूर्व मन्दिर स्थायी सामग्रियों से नहीं बनते थे। ईंट एवं पत्थर जैसी स्थायी सामग्रियों पर मंदिरों का निर्माण इसी काल की घटना है। इस काल के प्रमुख मंदिर हैं- तिगवा का विष्णु मंदिर (जबलपुर, मध्य प्रदेश), भूमरा का शिव मंदिर (नागोद, मध्य प्रदेश), नचना कुठार का पार्वती मंदिर (मध्य प्रदेश), देवगढ़ का दशवतार मंदिर (झाँसी, उत्तर प्रदेश) तथा ईंटों से निर्मित भीतरगाँव का लक्ष्मण मंदिर (कानपुर, उत्तर प्रदेश) आदि।

हर्षवर्धन का समय

गुप्तवंश ने बिहार और उत्तर प्रदेश स्थित अपने सत्ता-केंद्र से उत्तर और पश्चिम भारत पर ईसा की छठी सदी के मध्य तक लगभग 160 वर्ष राज्य किया । उसके बाद उत्तर भारत फिर अनेक राज्यों में बँट गया । हूणों ने लगभग 500 ई॰ से कश्मीर पंजाब और पश्चिमी भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

उत्तरी और पश्चिमी भारत लगभग आधे दर्जन सामंत राजाओं के हाथ में चला गया जिन्होंने गुप्त साम्राज्य को आपस में बाँट लिया था । इनमें से एक ने जो हरियाणा स्थित थानेसर का शासक था धीरे-धीरे अपनी प्रभुता अन्य सभी सामंतों पर कायम कर ली । यह शासक था हर्षवर्धन (606-647 ई॰) । थानेसर स्थित 'हर्ष की टीले' की खुदाई में कुछ ईंट की इमारतें मिली हैं पर वे राजमहल जैसी नहीं हैं ।

हर्ष ने कन्नौज को राजधानी बनाया जहाँ से उसने चारों ओर अपना प्रभुत्व फैलाया । हर्ष के शासनकाल का आरंभिक इतिहास बाणभट्ट से ज्ञात होता है । बाणभट्ट हर्ष का दरबारी कवि था । उसने हर्षचरित नामक पुस्तक लिखी है । इस इतिहास को चीनी यात्री हुआन सांग के विवरण के साथ मिलाकर पूरा किया जा सकता है जो ईसा की सातवीं सदी में भारत आया और लगभग 15 वर्ष इस देश में रहा । हर्ष के अपने अभिलेखों से विभिन्न प्रकार के करों और अधिकारियों के बारे में जानकारी मिलती है ।

हर्ष को भारत का अंतिम हिंदू सम्राट कहा गया है लेकिन वह न तो कट्टर हिंदू था और न ही सारे देश का शासक ही । उसका राज्य कश्मीर को छोड़ उत्तर भारत तक सीमित था । राजस्थान पंजाब उत्तर प्रदेश और बिहार उसके प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे । लेकिन उसका दबदबा इससे कहीं अधिक क्षेत्र में था ।

प्रशासन:

हर्ष ने अपने साम्राज्य का प्रशासन उसी ढर्रे पर किया जिस ढर्रे पर गुप्तवंशियों ने किया था फर्क यही है कि हर्ष का प्रशासन अधिक सामंतिक और विकेंद्रित था ।

राज्य की विशेष सेवाओं के लिए पुरोहितों को भूमि-दान देने की परंपरा जारी रही । इतना ही नहीं हर्ष ने पदाधिकारियों को शासनपत्र (सनद) के द्वारा जमीन देने की प्रथा चलाई । इन अनुदानों में भी वही रियायतें शामिल थीं जो पिछले अनुदानों में रहती थीं । चीनी यात्री हुआन सांग ने बताया है कि हर्ष की राजकीय आय चार भागों में बाँटी जाती थी ।

एक भाग राजा के खर्च के लिए रखा जाता था, दूसरा भाग विद्वानों के लिए, तीसरा भाग पदाधिकारियों और अमलों के बंदोबस्त के लिए और चौथा भाग धार्मिक कार्यो के लिए । उसने यह भी बताया कि राज्य के मंत्रियों और ऊँचे अधिकारियों को जागीर दी जाती थी । लगता है अधिकारियों को वेतन और पुरस्कार के रूप में भूमि देने की जागीरदारी प्रथा हर्ष ने ही शुरू की । इसलिए हम हर्ष के सिक्के अधिक मात्रा में नहीं पाते हैं ।

हर्ष के साम्राज्य में विधि-व्यवस्था अच्छी नहीं थी । चीनी यात्री हुआन सांग की सुरक्षा का प्रबंध राज्य की ओर से खास तौर से किया गया होगा फिर भी डाकुओं ने उसके माल-असबाब छीन लिए ।

हर्ष का शासनकाल चीनी यात्री हुआन सांग की यात्रा के कारण महत्वपूर्ण है । वह चीन से 629 ई॰ में चला और सारे रास्ते घूमते हुए भारत पहुँचा । भारत में लंबे अरसे तक ठहर कर 645 ई॰ में चीन लौट गया । वह बिहार में नालंदा जिला स्थित नालंदा के बौद्ध विश्वविद्यालय में अध्ययन करने तथा भारत से बौद्धग्रंथों को एकत्र कर ले जाने के लिए आया था ।उसने हर्ष के दरबार में कई वर्ष बिताए और भारत में व्यापक भ्रमण किया । हुआन सांग के प्रभाव में पड़कर हर्ष बौद्ध धर्म का महान समर्थक हो गया और उसने इसके लिए उदारतापूर्वक दान दिए।

उसने हर्ष के दरबार का और उस समय के जनजीवन का सजीव विवरण लिखा जो फा-हियान के विवरण से कहीं अधिक भरपूर और विश्वसनीय है । इससे लोगों के आर्थिक और सामाजिक जीवन पर तथा तत्कालीन धार्मिक संप्रदायों पर काफी प्रकाश पड़ता है ।

हर्ष ने महायान के सिद्धांतों के प्रचार के लिए कन्नौज में विशाल सम्मेलन आयोजित किया हर्ष ने कन्नौज के बाद प्रयाग में महासम्मेलन बुलाया ।

बाणभट्ट ने अपने आश्रयदाता के आरंभिक जीवन का चाटुकारितापूर्ण चित्रण हषर्चरित नामक पुस्तक में किया है जिसकी गहन अलंकारिक शैली परवर्ती लेखकों के लिए अनुकरणीय हो गई। हर्ष को विद्वानों के संपोषक के रूप में ही नहीं तीन नाटकों प्रियदशिर्का, रत्नावली और नागनन्द के रचयिता के रूप में भी याद किया जाता है ।